॥ श्रीहरिः ॥ 107

गोस्वामी तुलसीदासजीरचित

दोहावली

गीताप्रेस गोरखपुर
GITA PRESS, GORAKHPUR

गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥

दोहावली

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

अनुवादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार

107 Dohavali_Section_1_1_Front

॥ श्रीहरि: ॥

नम्र निवेदन

दोहावली प्रात:स्मरणीय भक्तकुल-चूड़ामणि गोस्वामी तुलसीदासकी प्रमुख कृतियोंमें है और भक्त-समाजमें इसका बहुत आदर है। गोस्वामीजीने अपनी अनुभूतियोंको बड़े ही भावपूर्ण दोहोंमें व्यक्त किया है। भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सदाचार, प्रेम, नीति आदि विविध विषयोंपर इतने सरस दोहे गोस्वामीजीकी कृतियोंके अतिरिक्त शायद ही कहीं मिलें। भक्तकी प्रासादिक वाणीका आनन्द और मिल कहाँ सकता है?

भगवान्‌की असीम अनुकम्पासे ही उनके भक्तोंकी अमृतवाणीके रसास्वादनका सौभाग्य प्राप्त होता है। दोहावलीकी टीका लिखते समय मेरा कुछ समय श्रीरामचर्चामें बीता, इसका मुझे अपार आनन्द एवं परम सन्तोष है। वस्तुत: जितना समय भगवान् और उनके भक्तोंकी चर्चामें बीते उतना ही समय सफल और सार्थक समझा जाना चाहिये। टीका लिखते समय स्थान-स्थानपर स्वर्गीय लाला भगवानदीनकी टीकासे सहायता ली गयी है, जिसका आभार हम सविनय स्वीकार करते हैं। मेरे सम्मान्य पं० श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी, एम० ए०, शास्त्रीने टीकाको आदिसे अन्ततक देखा है तथा यथास्थान सुधारा और सँवारा है। उनके साथ मेरा प्रेमका सम्बन्ध है, अतएव उनके प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन स्वयं मेरी ही दृष्टिमें अक्षम्य है।

इस टीकामें जो कुछ त्रुटि या दोष दीख पड़े, विज्ञ पाठक-पाठिकाएँ कृपापूर्वक मुझे सूचित कर दें तो अगले संस्करणमें सुधारा जा सकता है। संत, विद्वान् और महात्मागण मेरी इस धृष्टताके लिये क्षमा प्रदान करें।

विनीत—

अनुवादक

❑❑

विषय	पृष्ठ-संख्या

विषय	पृष्ठ-संख्या

विषय	पृष्ठ-संख्या

ईश्वर-महिमा

दोहा

माया जीव सुभाव गुन काल करम महदादि।
ईस अंक तें बढ़त सब ईस अंक बिनु बादि॥

भावार्थ—माया, जीव, स्वभाव, गुण, काल, कर्म और महत्तत्त्वादि सब ईश्वररूपी अंकके संयोगसे बढ़ते हैं और उस अंकके बिना व्यर्थ हो जाते हैं॥ २००॥

श्रीरामजीकी भक्तवत्सलता

हित उदास रघुबर बिरह बिकल सकल नर नारि।
भरत लखन सिय गति समुझि प्रभु चख सदा सुबारि॥

भावार्थ—श्रीरघुनाथजीके विरहमें उनके मित्र उदासीन, सभी स्त्री-पुरुष व्याकुल थे; परंतु श्रीभरतजी, श्रीलक्ष्मणजी और श्रीसीताजीकी दशाको समझकर तो प्रभु श्रीरामजीके नेत्रोंमें भी सदा आँसू भरे रहते थे (अर्थात् समस्त अवधवासी तो श्रीरामजीके कष्टसे दुःखी थे; परंतु स्वयं श्रीरामजी भरतजी, लक्ष्मणजी और सीताजीके दुःखसे दुःखित रहते थे)॥ २०१॥

सीता, लक्ष्मण और भरतके रामप्रेमकी अलौकिकता

सीय सुमित्रा सुवन गति भरत सनेह सुभाउ।
कहिबे को सारद सरस जनिबे को रघुराउ॥

भावार्थ—श्रीसीताजी तथा श्रीलक्ष्मणजीकी अनन्य प्रेमकी चाल और श्रीभरतजीके प्रेम और स्वभावको कहनेके लिये केवल सरस्वतीजी ही समर्थ हैं और जाननेके लिये केवल श्रीरघुनाथजी ही॥ २०२॥

जानी राम न कहि सके भरत लखन सिय प्रीति।
सो सुनि गुनि तुलसी कहत हठ सठता की रीति॥

भावार्थ—श्रीभरतजी, श्रीलक्ष्मणजी और श्रीसीताजीके प्रेमको श्रीरामचन्द्रजी ही जान सके; पर वे भी उसका वर्णन नहीं कर सके। इस बातको सुनकर और विचारकर भी तुलसीदास हठवश उनके प्रेमका वर्णन करने चला है, यह उसकी दुष्टता और मूर्खताकी ही निशानी है॥ २०३॥

लिये सूर्यके समान श्रीहनुमान्जीका हृदयमें ध्यान करके कार्य आरम्भ करो; फिर सब शुभ और सिद्ध ही होगा॥ २३१ ॥

सकल काज सुभ समउ भल सगुन सुमंगल जानु।
कीरति बिजय बिभूति भलि हियँ हनुमानहि आनु॥

भावार्थ—श्रीहनुमान्जीका हृदयमें ध्यान करो और यह निश्चय समझ लो कि तुम्हारे सभी कार्य सिद्ध होंगे, दिन अच्छे आवेंगे, सभी सद्गुण, सुमंगल, कीर्ति, विजय और विमल विभूतिकी प्राप्ति होगी॥ २३२ ॥

सूर सिरोमनि साहसी सुमति समीर कुमार।
सुमिरत सब सुख संपदा मुद मंगल दातार॥

भावार्थ—शूरोंके शिरोमणि, साहसी, सुबुद्धिमान् श्रीपवनकुमारका स्मरण करते ही स्मरण करनेवालेको सब सुख, सम्पत्ति, आनन्द और मंगल देनेवाले हैं॥ २३३ ॥

बाहुपीड़ाकी शान्तिके लिये प्रार्थना

तुलसी तनु सर सुख जलज भुज रुज गज बरजोर।
दलत दयानिधि देखिऐ कपि केसरी किसोर[१]॥

भावार्थ—हे दयानिधान हनुमान्जी! देखिये, तुलसीदासके शरीररूपी सरोवरके सुखरूपी कमलको यह भुजाका रोगरूप हाथी बलपूर्वक नष्ट कर रहा है। [इससे मुझको बचाइये; क्योंकि] आप केसरीनन्दन हैं (सिंहका[२] बच्चा ही मतवाले हाथीको परास्त कर सकता है)॥ २३४॥

भुज तरु कोटर रोग अहि बरबस कियो प्रबेस।
बिहगराज बाहन तुरत काढ़िअ मिटै कलेस॥

भावार्थ—मेरी भुजा पेड़के कोटरके समान है, उसमें रोगरूपी सर्प जबर्दस्ती घुस गया है। हे गरुड़वाहन हरि! उसे आप शीघ्र निकाल डालिये, जिससे मेरा कष्ट दूर हो॥ २३५ ॥

१-तुलसीदासकी बाँहमें रोग हो गया था, श्रीहनुमान्जीकी स्तुतिसे वह अच्छा हो गया था। ये दोहे उसी प्रसंगके कहे जाते हैं।

२-केसरी हनुमान्जीके पिताका नाम था और केसरी सिंहको भी कहते हैं।

बाहु बिटप सुख बिहँग थलु लगी कुपीर कुआगि।
राम कृपा जल सींचिऐ बेगि दीन हित लागि॥

भावार्थ—मेरा भुजारूपी वृक्ष सुखरूपी पक्षीका निवासस्थान था, उसमें दुष्ट रोगरूपी बुरी आग लग गयी है। हे हनुमान्‌जी! शीघ्र ही इस दीनके भलेके लिये श्रीरामकृपारूपी जल सींचकर उस आगको बुझा दीजिये (क्योंकि रामकृपा आपके ही अधीन है)॥ २३६॥

काशीमहिमा

सोरठा

मुक्ति जन्म महि जानि ग्यान खानि अघ हानि कर।
जहँ बस संभु भवानि सो कासी सेइअ कस न॥

भावार्थ—जहाँ भगवान् श्रीशिवजी और माता पार्वतीजी रहते हैं; उस काशीको पापोंको नष्ट करनेवाली, ज्ञानकी खान और मुक्तिको उत्पन्न करनेवाली जानकर क्यों न उसका सेवन किया जाय?॥ २३७॥

शंकरमहिमा

जरत सकल सुर बृंद बिषम गरल जेहिं पान किय।
तेहि न भजसि मन मंद को कृपालु संकर सरिस॥

भावार्थ—जिस भयंकर विष [की ज्वाला]-से सारे देवतागण जल रहे थे, उसको जिन्होंने स्वयं पान कर लिया, रे मन्द मन! तू उन श्रीशिवजीको क्यों नहीं भजता? उसके समान कृपालु [और] कौन है?॥ २३८॥

शंकरजीसे प्रार्थना

दोहा

बासर ढासनि के ढका रजनीं चहुँ दिसि चोर।
संकर निज पुर राखिऐ चितै सुलोचन कोर॥

भावार्थ—दिनमें तो मुझे ठगोंके धक्के खाने पड़ते हैं और रातको मुझे चारों ओरसे चोर सताते हैं, अतएव हे शंकरजी! कृपादृष्टिकी कोरसे मेरी ओर देखकर अपनी काशीपुरीमें इनसे मेरी रक्षा कीजिये॥ २३९॥

अपनी बीसीं आपुहीं पुरिहिं लगाए हाथ।
केहि बिधि बिनती बिस्व की करौं बिस्व के नाथ॥

भावार्थ—हे विश्वनाथजी! आपने अपनी 'बीसी'* में स्वयं अपनी पुरीमें कार्य आरम्भ कर दिया। (संहारलीला शुरू कर दी). फिर मैं विश्वकी ओरसे किस प्रकार आपसे [उसकी रक्षाके लिये] विनय करूँ?॥ २४०॥

भगवल्लीलाकी दुर्ज्ञेयता

और करै अपराधु कोउ और पाव फल भोगु।
अति बिचित्र भगवंत गति को जग जानै जोगु॥

भावार्थ—अपराध करे कोई और, उसके फलका भोग पावे कोई और ही। भगवान्‌की लीला अति विचित्र है, उसे जाननेयोग्य जगत्‌में कौन है (अर्थात् कोई नहीं)॥ २४१॥

प्रेममें प्रपंच बाधक है

प्रेम सरीर प्रपंच रुज उपजी अधिक उपाधि।
तुलसी भली सुबैदई बेगि बाँधिऐ ब्याधि॥

भावार्थ—प्रेमरूपी शरीरमें यदि विषय-आसक्तिका रोग लग जाता है तो बड़ी भारी पीड़ा उत्पन्न हो जाती है। तुलसीदासजी कहते हैं कि अच्छी वैद्यता इसीमें है कि व्याधिको तुरंत रोक दिया जाय (यानी विषयासक्ति आने ही न दे)॥ २४२॥

अभिमान ही बन्धनका मूल है

हम हमार आचार बड़ भूरि भार धरि सीस।
हठि सठ परबस परत जिमि कीर कोस कृमि कीस॥

भावार्थ—'हम बड़े हैं और हमारा आचार श्रेष्ठ है' ऐसे

---

* विंशति—बीसी एक ग्रहदशा होती है। रुद्रकी बीसीमें संहार ही अधिक हुआ करता है। कहते हैं एक बार तुलसीदासजीके समयमें काशीमें बड़ी भारी महामारी फैल गयी थी। यह दोहा उसी समयका बतलाया जाता है।

विषाद (अनेक प्रकारके शोक)-की सम्पत्ति (सामग्री)-से व्याकुल रहता है॥ २४६॥

सृष्टि स्वप्नवत् है

सपनें होइ भिखारि नृपु रंकु नाकपति होइ।
जागें लाभु न हानि कछु तिमि प्रपंच जियँ जोइ॥

भावार्थ—स्वप्नमें राजा भिखारी हो जाता है और कंगाल इन्द्र हो जाता है। परंतु जागनेपर लाभ या हानि कुछ भी नहीं होती। वैसे ही इस विषयरूप संसारको भी हृदयसे [स्वप्नवत्] देखो॥ २४७॥

हमारी मृत्यु प्रतिक्षण हो रही है

तुलसी देखत अनुभवत सुनत न समुझत नीच।
चपरि चपेटे देत नित केस गहें कर मीच॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि रे नीच! हाथोंसे तेरी चोटी पकड़कर मृत्यु नित्य ही झपटकर तेरे चपत जमा रही है। यह दशा देखकर, सुनकर और अनुभव करके भी तू नहीं समझता। [प्रतिक्षण शरीरका क्षय हो रहा है; यह देखते-सुनते हुए भी जीव अपनी मौतको भुलाकर विषय-सेवनमें ही लगा रहता है। उसीको चेतावनी देते हैं]॥ २४८॥

कालकी करतूत

करम खरी कर मोह थल अंक चराचर जाल।
हनत गुनत गनि गुनि हनत जगत ज्यौतिषी काल॥

भावार्थ—जगत्‌में कालरूपी ज्योतिषी हाथमें कर्मरूपी खड़िया लेकर मोहरूपी पट्टीपर चराचर जीवरूपी अंकोंको मिटाता है, हिसाब लगाता है, फिर गिन-गिनकर मिटाता है॥ २४९॥

इन्द्रियोंकी सार्थकता

कहिबे कहँ रसना रची सुनिबे कहँ किये कान।
धरिबे कहँ चित हित सहित परमारथहि सुजान॥

भावार्थ—चतुर परमात्माने परमार्थ (भगवत्-चर्चा) कहनेके

लिये जीभ बनायी, भगवद्गुणानुवाद सुननेके लिये कान रचे और प्रेमसहित भगवान्का ध्यान धरनेके लिये चित्त बनाया॥ २५०॥

सगुणके बिना निर्गुणका निरूपण असम्भव है

ग्यान कहै अग्यान बिनु तम बिनु कहै प्रकास।
निरगुन कहै जो सगुन बिनु सो गुरु तुलसीदास॥

भावार्थ—जो अज्ञानका कथन किये बिना ज्ञानका प्रवचन करे, अन्धकारका ज्ञान कराये बिना ही प्रकाशका स्वरूप बतला दे और सगुणको समझाये बिना ही निर्गुणका निरूपण कर दे, तुलसीदासजी कहते हैं कि वह मेरा गुरु है (तात्पर्य यह है कि अज्ञानके बिना ज्ञान, अन्धकारके बिना प्रकाश और सगुणके बिना निर्गुणकी सिद्धि नहीं हो सकती; निर्गुण कहते ही सगुणकी सिद्धि हो जाती है। अतएव जो सगुणोपासना छोड़कर निर्गुणोपासना करना चाहते हैं, उनको यथार्थ निर्गुणतत्त्वका ज्ञान होना बहुत ही कठिन है)॥ २५१॥

निर्गुणकी अपेक्षा सगुण अधिक प्रामाणिक है

अंक अगुन आखर सगुन समुझिअ उभय प्रकार।
खोएँ राखें आपु भल तुलसी चारु बिचार॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि निर्गुण ब्रह्म (१, २, ३) अंकके समान है और सगुण भगवान् अक्षर (एक, दो, तीन)-के समान हैं; अब दोनों प्रकारोंको समझना चाहिये और फिर किसके न रखनेसे और किसके रखनेसे अपना कल्याण है, इस बातको भी भलीभाँति विचारना चाहिये (व्यापारी लोग हुंडीमें पहले अंकोंमें संख्या-जैसे १००० लिखकर फिर अक्षरोंमें—'अखरे एक हजार' ऐसा लिख देते हैं। दोनों ही ठीक है, परंतु अक्षरोंमें लिख देनेसे न तो किसी तरहका भ्रम रह सकता है और न एक शून्य घटा-बढ़ाकर कोई हजारको सौ या दस हजार ही बना सकता है। इसी प्रकार निर्गुण और सगुण दोनों सत्य हैं, एक ही दो रूपोंमें हैं; परंतु निर्गुणकी अपेक्षा सगुण अधिक प्रामाणिक है। निर्गुणमें तो किसी तरहका भ्रम भी रह सकता है, परंतु

सगुणमें न तो कोई भ्रम रह सकता है और न किसी प्रकारसे कोई छल ही चल सकता है।)॥ २५२॥

विषयासक्तिका नाश हुए बिना ज्ञान अधूरा है

परमारथ पहिचानि मति लसति बिषयँ लपटानि।
निकसि चिता तें अधजरित मानहुँ सती परानि॥

भावार्थ—परमार्थ (सत्य वस्तु)-की पहचान हो जानेपर भी विषयोंमें लिपटी हुई बुद्धि ऐसी लगती है, मानो चितासे निकलकर भागी हुई कोई अधजली सती हो॥ २५३॥

विषयासक्त साधुकी अपेक्षा वैराग्यवान् गृहस्थ अच्छा है

सीस उघारन किन कहेउ बरजि रहे प्रिय लोग।
घरहीं सती कहावती जरती नाह बियोग॥

भावार्थ—अधजली भागनेवाली ऐसी सतीको सिर खोलनेके लिये किसने कहा था? प्यारे सगे-सम्बन्धी तो सब रोक रहे थे। इससे तो यही अच्छा था कि स्वामीके वियोगकी अग्निमें सदा जला करती और घर बैठी ही सती कहलाती। (तात्पर्य यह है कि साधु होकर फिर विषयोंकी ओर ललचानेसे तो घर बैठे भजन करना ही अच्छा है।) ॥ २५४॥

साधुके लिये पूर्ण त्यागकी आवश्यकता

खरिया खरी कपूर सब उचित न पिय तिय त्याग।
कै खरिया मोहि मेलि कै बिमल बिबेक बिराग॥

भावार्थ—[कहते हैं कि साधु होनेके बाद तुलसीदासजीको एक दिन उनकी स्त्री मिल गयी। स्त्रीने उनकी झोलीमें खरी (सफेद गोपीचन्दन) और कपूर आदि देखकर कहा कि] हे प्रियतम! जब आप अपनी झोलीमें खरी और कपूर आदि सब सामान रखते हैं तब स्त्रीका त्याग उचित नहीं है। अतएव या तो मुझको भी इस झोलीमें डाल दीजिये, अथवा विशुद्ध ज्ञान और वैराग्यको धारण कीजिये। [कहते हैं कि उसी क्षणसे तुलसीदासजीने

झोली-झंडा फेंक दिया। यह दोहा वास्तवमें सभी विरक्त—वेषधारी पुरुषोंके लिये चेतावनी-स्वरूप है] ॥ २५५ ॥

भगवत्प्रेममें आसक्ति बाधक है, गृहस्थाश्रम नहीं

घर कीन्हें घर जात है घर छाँड़े घर जाइ।
तुलसी घर बन बीचहीं राम प्रेम पुर छाइ॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि घर करनेसे (गृहस्थीमें रहनेसे) अपना असली घर (परलोक) नष्ट हो जाता है और घर छोड़नेसे (संन्यास ग्रहण करनेसे) यहाँका घर (गृहस्थी) नष्ट होता है। अतएव तू घर और वनके बीचमें ही (अर्थात् घरहीमें गृहत्यागीकी भाँति रहकर) श्रीरामजीके प्रेमकी पुरी बसा॥ २५६ ॥

संतोषपूर्वक घरमें रहना ही उत्तम है

दिएँ पीठि पाछें लगै सनमुख होत पराइ।
तुलसी संपति छाँह ज्यों लखि दिन बैठि गँवाइ॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि सम्पत्ति शरीरकी छायाके समान है। इसको पीठ देकर चलनेसे यह पीछे-पीछे चलती है और सामने होकर चलनेसे दूर भाग जाती है। (जो धनसे मुँह मोड़ लेता है, धनकी नदी उसके पीछे-पीछे बहती चली आती है और जो धनके लिये सदा ललचाता रहता है, उसे सपनेमें भी पैसा नहीं मिलता।) इस बातको समझकर घर बैठकर ही दिन बिताओ (अर्थात् संतोषसे रहो और भगवान्‌का भजन करो)॥ २५७ ॥

विषयोंकी आशा ही दुःखका मूल है

तुलसी अद्‌भुत देवता आसा देवी नाम।
सेएँ सोक समर्पई बिमुख भएँ अभिराम॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि आशादेवी नामकी एक अद्‌भुत देवी है; यह सेवा करनेपर तो शोक (दुःख) देती है और इससे विमुख होनेपर सुख मिलता है॥ २५८ ॥

मोह-महिमा

सोई सेंवर तेइ सुवा सेवत सदा बसंत।
तुलसी महिमा मोह की सुनत सराहत संत॥

भावार्थ—वही सेमलका पेड़ है और वही तोते हैं (बार-बार अनुभव कर चुके हैं कि इसके फलमें गूदा नहीं होता), तो भी मोहवश वसन्त-ऋतु आनेपर सदा उसीपर मँडराये रहते हैं। (चोंच मारते हैं, रुई उड़ जाती है, हाथ कुछ भी नहीं आता।) तुलसीदासजी कहते हैं कि इस बातको सुनकर संतलोग भी मोहकी महिमाकी सराहना करते हैं॥ २५९॥

विषय-सुखकी हेयता

करत न समुझत झूठ गुन सुनत होत मति रंक।
पारद प्रगट प्रपंचमय सिद्धिउ नाउँ कलंक॥

भावार्थ—[बार-बार धोखा खानेपर भी] विषयी मनुष्य विषयोंके लिये चेष्टा करते हुए यह नहीं समझते कि इनमें कहीं भी सुख नहीं है; विषयोंके झूठे गुणोंको सुनते ही उनकी बुद्धिका दिवाला निकल जाता है (उनका मन विषयोंके लिये ललचा उठता है)। यह प्रपंचमय विषय-सुख प्रत्यक्ष पारेके समान है, जिसके सिद्ध होनेपर भी उसका नाम 'कलंक' ही होता है॥ २६०॥

लोभकी प्रबलता

ग्यानी तापस सूर कबि कोबिद गुन आगार।
केहि कै लोभ बिडंबना कीन्हि न एहिं संसार॥

भावार्थ—ज्ञानी, तपस्वी, शूरवीर, कवि, पण्डित और गुणोंका धाम इस संसारमें ऐसा कौन मनुष्य है, जिसकी लोभने मिट्टी पलीद न की हो?॥ २६१॥

धन और ऐश्वर्यके मद तथा कामकी व्यापकता

श्रीमद बक्र न कीन्ह केहि प्रभुता बधिर न काहि।
मृगलोचनि के नैन सर को अस लाग न जाहि॥

भावार्थ—धनके मदने किसको टेढ़ा नहीं कर दिया, प्रभुताने

किसको बहरा नहीं बना दिया और मृगलोचनी (सुन्दर स्त्री)-के नयन-बाण ऐसा कौन है, जिनको नहीं लगे?॥ २६२॥

मायाकी फौज

ब्यापि रहेउ संसार महुँ माया कटक प्रचंड।
सेनापति कामादि भट दंभ कपट पाषंड॥

भावार्थ—मायाकी प्रचण्ड सेना संसारभरमें फैल रही है; कामादि (काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह और मत्सर) वीर इस सेनाके सेनापति हैं और दम्भ, कपट, पाखण्ड उसके योद्धा हैं॥ २६३॥

काम, क्रोध, लोभकी प्रबलता

तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ।
मुनि बिग्यान धाम मन करहिं निमिष महुँ छोभ॥

भावार्थ—हे तात! काम, क्रोध, और लोभ—ये तीन दुष्ट बड़े ही बलवान् हैं, ये विज्ञान-सम्पन्न मुनिके मनमें भी पलक मारते-मारते क्षोभ उत्पन्न कर देते हैं॥ २६४॥

काम, क्रोध, लोभके सहायक

लोभ कें इच्छा दंभ बल काम कें केवल नारि।
क्रोध कें परुष बचन बल मुनिबर कहहिं बिचारि॥

भावार्थ—श्रेष्ठ मुनि विचारकर कहते हैं कि लोभके इच्छा और दम्भका बल है, कामके केवल कामिनीका बल है और क्रोधके कठोर वचनका बल है॥ २६५॥

मोहकी सेना

काम क्रोध लोभादि मद प्रबल मोह कै धारि।
तिन्ह महँ अति दारुन दुखद मायारूपी नारि॥

भावार्थ—काम, क्रोध, मद और लोभ आदि मोहकी प्रबल सेना है। इनमें स्त्री जो मायाकी साक्षात् मूर्ति है वह तो बहुत ही भयानक दुःख देनेवाली है॥ २६६॥

अग्नि, समुद्र, प्रबल स्त्री और कालकी समानता

काह न पावक जारि सक का न समुद्र समाइ।
का न करै अबला प्रबल केहि जग कालु न खाइ॥

भावार्थ—अग्नि क्या नहीं जला सकती? समुद्रमें कौन वस्तु नहीं डूब सकती, प्रबल होनेपर अबला कहलानेवाली स्त्री क्या नहीं कर सकती? और जगत्‌में काल किसको नहीं खाता?॥ २६७॥

स्त्री झगड़े और मृत्युकी जड़ है

जनमपत्रिका बरति कै देखहु मनहिं बिचारि।
दारुन बैरी मीचु के बीच बिराजति नारि॥

भावार्थ—जन्मकुण्डलीको व्यवहारमें लाकर मनमें विचारकर देखो कि स्त्री भयंकर वैरीके और मृत्युके बीचके स्थानमें विराज रही है (कुण्डलीके बारह स्थानोंमें छठा शत्रुका और आठवाँ मृत्युका माना जाता है। इनके बीचमें स्त्रीका स्थान सातवाँ है। जगत्‌में स्त्रियोंके कारण न मालूम कितने लोगोंमें शत्रुता और कितनोंकी मृत्यु हुई है।) ॥ २६८॥

उद्‌बोधन

दीपसिखा सम जुबति तन मन जनि होसि पतंग।
भजहि राम तजि काम मद करहि सदा सतसंग॥

भावार्थ—युवती स्त्रियोंका [सुन्दर] शरीर दीपककी लौके समान है, मन! तू उसमें पतंग मत बन [नहीं तो भस्म हो जायगा]। काम और मदको त्यागकर श्रीरामका भजन कर और सदा सत्संग कर॥ २६९॥

गृहासक्ति श्रीरघुनाथजीके स्वरूपके ज्ञानमें बाधक है

काम क्रोध मद लोभ रत गृहासक्त दुखरूप।
ते किमि जानहिं रघुपतिहि मूढ़ परे भव कूप॥

भावार्थ—जो काम, क्रोध, मद और लोभके परायण हैं और जो दुःखरूप गृहमें आसक्त हैं, वे संसाररूपी कुएँमें पड़े हुए मूढ़ श्रीरघुनाथजीको कैसे जान सकते हैं?॥ २७०॥

भगवद्भजनके अतिरिक्त और सब प्रयत्न व्यर्थ हैं

खल प्रबोध जग सोध मन को निरोध कुल सोध।
करहिं ते फोकट पचि मरहिं सपनेहुँ सुख न सुबोध॥

भावार्थ—जो लोग दुष्टोंको ज्ञानका उपदेश देना, संसारका सुधार करना, मनका निरोध करना और कुलको शुद्ध करना चाहते हैं, वे व्यर्थ ही परिश्रम करते हुए मर जाते हैं; उन्हें स्वप्नमें भी सुख या सुन्दर ज्ञान नहीं मिलता। [अतएव इन सब कार्योंके पीछे न पड़कर संतोषपूर्वक श्रीभगवान्‌का भजन करना चाहिये]॥ २७४॥

संतोषकी महिमा

सोरठा

कोउ बिश्राम कि पाव तात सहज संतोष बिनु।
चलै कि जल बिनु नाव कोटि जतन पचि पचि मरिअ॥

भावार्थ—स्वाभाविक संतोषके बिना क्या कोई शान्ति पा सकता है? चाहे करोड़ों प्रकारसे जतन करते-करते कोई मर जाय, परंतु जलके बिना सूखी जमीनपर क्या कभी नाव चल सकती है?॥ २७५॥

मायाकी प्रबलता और उसके तरनेका उपाय

सुर नर मुनि कोउ नाहिं जेहि न मोह माया प्रबल।
अस बिचारि मन माहिं भजिअ महामाया पतिहि॥

भावार्थ—जिसे भगवान्‌की प्रबल माया मोहित न कर दे ऐसा देवता, मनुष्य अथवा मुनि कोई भी नहीं है। यों मनमें विचारकर उस महामायाके स्वामी (प्रेरक) श्रीरामका भजन करना चाहिये॥ २७६॥

गोस्वामीजीकी अनन्यता

दोहा

एक भरोसो एक बल एक आस बिस्वास।
एक राम घन स्याम हित चातक तुलसीदास॥

भावार्थ—एक ही भरोसा है, एक ही बल है, एक ही आशा

प्रणमें चतुर चातकको अपने प्रेमका प्रण निबाहनेमें कभी भूल नहीं करनी चाहिये॥ २८२॥

उपल बरसि गरजत तरजि डारत कुलिस कठोर।
चितव कि चातक मेघ तजि कबहुँ दूसरी ओर॥

भावार्थ—मेघ कड़क-कड़ककर गर्जता हुआ ओले बरसाता है और कठोर बिजली भी गिरा देता है; इतनेपर भी प्रेमी पपीहा मेघको छोड़कर क्या कभी किसी दूसरी ओर ताकता है?॥ २८३॥

पबि पाहन दामिनि गरज झरि झकोर खरि खीझि।
रोष न प्रीतम दोष लखि तुलसी रागहि रीझि॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि मेघ वज्र गिराकर, ओले बरसाकर, बिजली चमकाकर, कड़क-कड़ककर, वर्षाकी झड़ी लगाकर और आँधीके झकोरे देकर अपना बड़ा भारी रोष प्रकट करता है; परंतु चातकको अपने प्रियतमका दोष देखकर क्रोध नहीं होता (उसे दोष दीखता ही नहीं,) बल्कि इसमें भी वह अपने प्रति मेघका अनुराग देखकर उसपर रीझ जाता है॥ २८४॥

मान राखिबो माँगिबो पिय सों नित नव नेहु।
तुलसी तीनिउ तब फबैं जौ चातक मत लेहु॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि आत्मसम्मानकी रक्षा करना, माँगना और फिर भी प्रियतमसे प्रेमका नित्य नवीन होना (बढ़ना)—ये तीनों बातें तभी शोभा देती हैं जब चातकके मतका अनुसरण किया जाय॥ २८५॥

तुलसी चातक ही फबै मान राखिबो प्रेम।
बक्र बुंद लखि स्वातिहू निदरि निबाहत नेम॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि प्रेमके मानकी रक्षा करना और प्रेमको भी निबाहना चातकको ही शोभा देता है। स्वाती नक्षत्रमें भी यदि बूँद [मेघकी ओर निहारते हुए उसके मुखमें सीधी न पड़कर] टेढ़ी पड़ती है तो वह उसका निरादर करके प्रेमके नियमको निबाहता

है (चोंचको टेढ़ी करनेमें दूसरी ओर ताकना हो जायगा और इससे उसके प्रेममें व्यभिचार होगा, इसलिये वह प्यासा ही रह जाता है, परंतु मुँह टेढ़ा नहीं करता। दूसरी बात यह है कि वह टेढ़ी चोंच करके पीता है तो उसका मान घटता है, वह मँगता नहीं है, प्रेमी है; देना हो तो सीधे दो, नहीं तो न सही)॥ २८६॥

तुलसी चातक माँगनो एक एक घन दानि।
देत जो भू भाजन भरत लेत जो घूँटक पानि॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि चातक एक ही (अद्वितीय) माँगनेवाला है और बादल भी एक ही (अद्वितीय) दानी है। बादल इतना देता है कि पृथ्वीके सब बर्तन (झील, तालाब आदि) भर जाते हैं; परंतु चातक केवल एक घूँट ही पानी लेता है॥ २८७॥

तीनि लोक तिहुँ काल जस चातक ही कें माथ।
तुलसी जासु न दीनता सुनी दूसरे नाथ॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि तीनों लोकोंमें और तीनों कालोंमें कीर्ति तो केवल अनन्य प्रेमी चातकके ही भाग्यमें है, जिसकी दीनता संसारमें किसी भी दूसरे स्वामीने नहीं सुन पायी॥ २८८॥

प्रीति पपीहा पयद की प्रगट नई पहिचानि।
जाचक जगत कनाउड़ो कियो कनौड़ा दानि॥

भावार्थ—पपीहा और मेघके प्रेमका परिचय प्रत्यक्ष ही नये ही ढंगका है; याचक (मँगता) तो संसारभरका ऋणी होता है, परंतु इस प्रेमी पपीहेने दानी मेघको अपना ऋणी बना डाला॥ २८९॥

नहिं जाचत नहिं संग्रही सीस नाइ नहिं लेइ।
ऐसे मानी मागनेहि को बारिद बिन देइ॥

भावार्थ—पपीहा न तो मुँहसे माँगता है, न जलका संग्रह करता है और न सिर झुकाकर लेता ही है (ऊँचा सिर किये ही 'पिउ', 'पिउ' की टेर लगाया करता है) ऐसे मानी माँगनेवाले चातकको मेघके अतिरिक्त और कौन दे सकता है?॥ २९०॥

को को न ज्यायो जगत में जीवन दायक दानि।
भयो कनौड़ो जाचकहि पयद प्रेम पहिचानि॥

भावार्थ—जगत्‌में इस जीवनदाता दानी मेघने किस-किसको नहीं जिलाया? परंतु अपने प्रेमी—याचक चातकके प्रेमको पहचानकर तो यह मेघ उलटा स्वयं उसीका ऋणी हो गया॥ २९१॥

साधन साँसति सब सहत सबहि सुखद फल लाहु।
तुलसी चातक जलद की रीझि बूझि बुध काहु॥

भावार्थ—साधनमें सभी कष्ट सहते हैं और फलकी प्राप्ति सभीके लिये सुखदायिनी होती है; परंतु तुलसीदासजी कहते हैं कि चातककी-सी रीझ (प्रेम) और मेघकी-सी बुद्धि बिरले ही बुद्धिमान्‌की होती है (चातक मेघपर इतना रीझा रहता है कि कष्ट सहनेपर भी उससे प्रेम बढ़ाता ही है और मेघकी ऐसी बुद्धिगुणज्ञता है कि वह दाता होकर भी ऋणी बन जाता है।)॥ २९२॥

चातक जीवन दायकहि जीवन समयँ सुरीति।
तुलसी अलख न लखि परै चातक प्रीति प्रतीति॥

भावार्थ—चातकके जीवनदाता मेघके प्रेमकी सुन्दर रीति तो उसके जीवनकालमें ही देखनेमें आती है; परंतु [अनन्यप्रेमी] चातकका प्रेम एवं विश्वास तो अलख (अज्ञेय) है, तुलसीदासजी कहते हैं, वह तो किसीके दीखनेमें ही नहीं आता (अर्थात् उसका प्रेम तो मरते समय भी बना रहता है)—(देखिये दो० ३०२, ३०४, ३०५)॥ २९३॥

जीव चराचर जहँ लगें है सब को हित मेह।
तुलसी चातक मन बस्यो घन सों सहज सनेह॥

भावार्थ—संसारमें जितने चर-अचर जीव हैं, मेघ उन सभीका हितकारी है; परंतु तुलसीदासजी कहते हैं कि उस मेघके प्रति स्वाभाविक स्नेह तो एक चातकके ही चित्तमें बसा हुआ है॥ २९४॥

डोलत बिपुल बिहंग बन पिअत पोखरिन बारि।
सुजस धवल चातक नवल तुही भुवन दस चारि॥

भावार्थ—वनमें बहुत-से पक्षी डोलते हैं और वे पोखरियोंका

जल पिया करते हैं; परंतु हे नित्य नवीन प्रेमी चातक! चौदहों लोकोंको अपने निर्मल यशसे उज्ज्वल तो एक तू ही करता है॥ २९५॥

मुख मीठे मानस मलिन कोकिल मोर चकोर।
सुजस धवल चातक नवल रह्यो भुवन भरि तोर॥

भावार्थ—कोयल, मोर और चकोर मुँहके तो मीठे होते हैं; परंतु मनके बड़े मैले होते हैं (बोली तो बड़ी मीठी बोलते हैं, पर कीट-सर्पादि जीवोंको खा जाते हैं), परंतु हे नवल चातक! विश्वभरमें निर्मल यश तो तेरा ही छाया हुआ है॥ २९६॥

बास बेस बोलनि चलनि मानस मंजु मराल।
तुलसी चातक प्रेम की कीरति बिसद बिसाल॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि हंसका निवासस्थान (मानसरोवर), वेष (रंग-रूप), बोली, चाल और [नीर-क्षीरका विवेक रखनेवाला तथा मोती चुगनेकी टेकवाला] मन सभी सुन्दर हैं, परंतु प्रेमकी कीर्ति तो सबसे बढ़कर विस्तृत और निर्मल चातककी ही है॥ २९७॥

प्रेम न परखिअ परुषपन पयद सिखावन एह।
जग कह चातक पातकी ऊसर बरसै मेह॥

भावार्थ—संसारके लोग (विषयीजन) कहते हैं कि चातक पापी है, क्योंकि मेघ ऊसरतकमें बरसता है [परंतु चातकके मुँहमें नहीं बरसता]; पर मेघ इससे यह शिक्षा देता है कि प्रेमकी परीक्षा कठोरतासे नहीं करनी चाहिये (अर्थात् कठोरतामें प्रेम नहीं है, ऐसा नहीं मानना चाहिये; कहीं-कहीं कठोरतामें ही प्रेमका प्रकाश होता है। चातक पापी नहीं है, महान् प्रेमी है; उसके प्रेमका यश मेघकी कठोरतासे बढ़ता है)॥ २९८॥

होइ न चातक पातकी जीवन दानि न मूढ़।
तुलसी गति प्रहलाद की समुझि प्रेम पथ गूढ़॥

भावार्थ—न तो चातक ही पापी है और न जीवनदाता मेघ ही मूर्ख है। तुलसीदासजी कहते हैं कि प्रह्लादकी दशापर विचार करके समझो कि प्रेमका मार्ग कितना गूढ़ (सूक्ष्म) है। (प्रह्लादके पद-पदपर

कष्ट मिलता है और भगवान् उसके कष्टको जानते हुए भी बहुत विलम्बसे प्रकट होते हैं। यह उनकी प्रेमलीला ही है।)॥ २९९॥

गरज आपनी सबन को गरज करत उर आनि।
तुलसी चातक चतुर भो जाचक जानि सुदानि॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि अपनी-अपनी गरज सभीको होती है और उसी गरजको (कामनाको) हृदयमें रखकर लोग जहाँ-तहाँ गरज करते (सबसे विनती करते) फिरते हैं। परंतु चतुर (अनन्य प्रेमी) चातक तो एक मेघको ही सर्वोत्तम दानी समझकर केवल उसीका याचक बना॥ ३००॥

चरग चंगु गत चातकहि नेम प्रेम की पीर।
तुलसी परबस हाड़ पर परिहैं पुहुमी नीर॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि बाजके पंजेमें फँसनेपर चातकको अपने प्रेमके नियमकी पीड़ा (चिन्ता) होती है। [उसे यह चिन्ता नहीं होती कि मैं मर जाऊँगा, पर इस बातकी बड़ी पीड़ा होती है कि बाजके द्वारा मारे जानेपर] मेरी हड्डियाँ और पाँख [स्वाती-नक्षत्रमें मेघ-जलमें न पड़कर] पृथ्वीके साधारण जलमें पड़ेगा॥ ३०१॥

बध्यो बधिक पर्‍यो पुन्य जल उलटि उठाई चोंच।
तुलसी चातक प्रेमपट मरतहुँ लगी न खोंच॥

भावार्थ—किसी बहेलियेने चातकको मार दिया, वह पुण्यसलिला गंगाजीमें गिर पड़ा; परंतु गिरते ही उस अनन्य प्रेमी चातकने चोंचको उलटकर ऊपर उठा लिया। तुलसीदासजी कहते हैं कि चातकके प्रेमरूपी वस्त्रपर मरते दमतक कोई खरोंच नहीं लगी (वह कहींसे फटा नहीं)॥ ३०२॥

अंड फोरि कियो चेटुवा तुष पर्‍यो नीर निहारि।
गहि चंगुल चातक चतुर डार्‍यो बाहिर बारि॥

भावार्थ—किसी चातकने अंडेको फोड़कर उसमेंसे बच्चा निकाला, परंतु अंडेके छिलकेको पानीमें पड़ा हुआ देखकर उस [प्रेमराज्यके] चतुर चातकने तुरंत उसे पंजेसे पकड़कर जलसे बाहर फेंक दिया॥ ३०३॥

दोहा

तुलसीं के मत चातकहि केवल प्रेम पिआस।
पिअत स्वाति जल जान जग जाँचत बारह मास॥

भावार्थ—तुलसीदासके मतसे तो चातकको केवल प्रेमकी ही प्यास है [जलकी नहीं]; क्योंकि सारा जगत् इस बातको जानता है कि चातक पीता तो है केवल स्वाति-नक्षत्रका जल, परंतु याचक बना रहता है बारहों महीने॥ ३०८॥

आलबाल मुकुताहलनि हिय सनेह तरु मूल।
होइ हेतु चित चातकहि स्वाति सलिलु अनुकूल॥

भावार्थ—चातकको हृदयरूपी मोतियोंकी (बहुमूल्य) क्यारीमें प्रेमरूपी वृक्षकी जड़ लगी है। ईश्वर करे स्वाति-नक्षत्रका जल चातकके चित्तमें रहनेवाले प्रेमके लिये अनुकूल हो जाय। (अर्थात् स्वाति-नक्षत्रके जलसे हृदयमें लगी हुई प्रेम-वृक्षकी जड़ भलीभाँति सींची जाय, जिससे प्रेम-वृक्ष फूल-फलकर लहलहा उठे)॥ ३०९॥

उष्न काल अरु देह खिन मग पंथी तन ऊख।
चातक बतियाँ न रुचीं अन जल सींचे रूख॥

भावार्थ—गर्मियोंके दिन थे, चातक शरीरसे खिन्न था (थका हुआ था,) रास्ते चल रहा था, उसका शरीर बहुत गरम हो रहा था [इतनेमें उसे कुछ पेड़ दीख पड़े, मनमें आया कि जरा विश्राम कर लूँ] परंतु अनन्य प्रेमी चातकको मनकी यह बात अच्छी नहीं लगी; क्योंकि वे वृक्ष [स्वाति-नक्षत्रके जलसे सींचे हुए न होकर] दूसरे ही जलसे सींचे हुए थे॥ ३१०॥

अन जल सींचे रूख की छाया तें बरु घाम।
तुलसी चातक बहुत हैं यह प्रबीन को काम॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि यों चातक (चातक-प्रेमका दम भरनेवाले) बहुत हैं, परंतु 'स्वातीके जलके अतिरिक्त अन्य जलसे सींचे हुए वृक्षकी छायासे तो धूप ही अच्छी' ऐसा मानना तो किसी [प्रेम-प्रणको निबाहनेमें] चतुर चातक (सच्चे प्रेमी)-का ही काम है॥ ३११॥

एक अंग जो सनेहता निसि दिन चातक नेह।
तुलसी जासों हित लगै वहि अहार वहि देह॥

भावार्थ—चातकका जो रात-दिनका (नित्य—चौबीसों घंटेका) प्रेम है, वही एकांगी प्रेम है।[१] तुलसीदासजी कहते हैं, ऐसा एकांगी प्रेम जिसके साथ लग जाता है, वही उसका आहार है, (वह खाना-पीना सब भूलकर उसीकी स्मृतिसे जीता रहता है) और वही उसका शरीर है (वह अपने शरीरकी सुधि भुलाकर उसीके शरीरमें तन्मय हुआ रहता है)॥ ३१२॥

एकांगी अनुरागके अन्य उदाहरण

बिबि रसना तनु स्याम है बंक चलनि बिष खानि।
तुलसी जस श्रवननि सुन्यो सीस समरप्यो आनि॥

भावार्थ—जिसके दो जीभे हैं, काला शरीर और टेढ़ी चाल है तथा जो विषकी खान है, ऐसा सर्प भी कानोंसे अपनी प्रशंसा सुनते ही [प्रेमवश] आकर अपना सिर सौंप देता है[२]॥ ३१३॥

मृगका उदाहरण

आपु ब्याध को रूप धरि कुहौ कुरंगहि राग।
तुलसी जो मृग मन मुरै परै प्रेम पट दाग॥

भावार्थ—राग (वीणाका मधुर स्वर) स्वयं बहेलियाका रूप धरकर हरिनको मार डाले [परंतु रागके प्रति उसका अनुराग तो वैसा ही रहता है]। तुलसीदासजी कहते हैं कि यदि रागकी ओरसे हरिनका मन फिर जाय तो प्रेमरूपी (स्वच्छ) वस्त्रमें दाग लग जाय॥ ३१४॥

१-एकांगी प्रेम उसे कहते हैं, जिसमें प्रेमी यह नहीं देखता कि प्रेमास्पद उसके बदलेमें प्रेम करता है या नहीं।

२-सँपेरा मन्त्र पढ़कर साँपकी बड़ी प्रशंसा करता है और पूँगी बजाता है। प्रशंसा सुनकर सर्प प्रसन्न होकर तुरंत दौड़कर उसके पास आ पहुँचता है और सँपेरेके द्वारा पकड़ा जाता है।

सर्पका उदाहरण

तुलसी मनि निज दुति फनिहि ब्याधहि देउ दिखाइ।
बिछुरत होइ न आँधरो ताते प्रेम न जाइ॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि [मणिके लोभसे सर्पको मारनेके लिये आये हुए] ब्याधको मणि अपने प्रकाशसे भले ही सर्प दिखला दे, [और इस प्रकार उसकी मृत्युमें सहायक बनकर शत्रुका काम करे] परंतु [इससे क्या मणिके प्रति सर्पका अनुराग कम हो जाता है?] क्या मणिके वियोगमें सर्प अन्धा नहीं हो जाता* (अर्थात् वह अन्धा हो जाता है) और मणिसे उसका प्रेम नहीं हटता॥ ३१५॥

कमलका उदाहरण

जरत तुहिन लखि बनज बन रबि दै पीठि पराउ।
उदय बिकस अथवत सकुच मिटै न सहज सुभाउ॥

भावार्थ—कमलोंके वनको पालेसे जलते हुए देखकर भी सूर्य उनकी ओर पीठ देकर (उनकी अवहेलना करके) चाहे भाग जाय, परंतु सूर्यके उदय होनेपर खिल जाना और अस्त होनेपर सिकुड़ जाना—कमलोंका यह सहज स्वभाव (स्वाभाविक प्रेम) नहीं मिट सकता॥ ३१६॥

मछलीका उदाहरण

देउ आपनें हाथ जल मीनहि माहुर घोरि।
तुलसी जिऐ जो बारि बिनु तौ तु देहि कबि खोरि॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जल चाहे स्वयं अपने हाथसे विष घोलकर मछलीको दे दे, पर यदि मछली बिना जलके (जलसे बाहर निकलनेपर) जीवित रह जाय तो तुम कवियोंको दोष

---

* कहा जाता है कि रातको मणिधर सर्प अपनी मणि निकालकर जमीनपर रख देता है और उसके प्रकाशसे ओस चाटा करता है और आहारकी खोज किया करता है। ब्याध आकर उस मणिपर गोबर डाल देता है, जिससे मणिका प्रकाश ढक जाता है और सर्प मणिको न पाकर अन्धा हो जाता है और सिर पटक-पटककर मर जाता है।

दे सकते हो (यह कह सकते हो कि यह सब कवियोंकी झूठी कल्पना है)। तात्पर्य यह कि जलके द्वारा चाहे जैसी नीचता होनेपर भी एकांगी प्रेमका पालन करनेवाली मछली जलके वियोगमें नहीं जी सकती॥ ३१७॥

मकर उरग दादुर कमठ जल जीवन जल गेह।
तुलसी एकै मीन को है साँचिलो सनेह॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि मगर, पानीके साँप, मेढक और कछुए आदि जलचर जीवोंका भी जल ही जीवन है और जल ही घर है, परंतु जलके साथ सच्चा प्रेम तो एक मछलीका ही है। (और सब जीव जलके बिना स्थलपर भी जीवित रह जाते हैं, परंतु मछली तो जलका वियोग होते ही प्राण त्याग कर देती है)॥ ३१८॥

मयूरशिखा बूटीका उदाहरण

तुलसी मिटे न मरि मिटेहुँ साँचो सहज सनेह।
मोरसिखा बिनु मूरिहूँ पलुहत गरजत मेह॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि सच्चा और स्वाभाविक प्रेम मर मिटनेपर भी नहीं मिटता। बादलोंके गरजते ही [मेघके प्रति प्रेम करनेवाली सूखी हुई] मयूरशिखा बूटी बिना जड़की होनेपर भी [तुरंत] पनप उठती है॥ ३१९॥

सुलभ प्रीति प्रीतम सबै कहत करत सब कोइ।
तुलसी मीन पुनीत ते त्रिभुवन बड़ो न कोइ॥

भावार्थ—सभी यह कहते हैं कि प्रेम और प्रियतम दोनों ही सुलभ (सस्ते) हैं और सब ऐसा करते भी हैं (किसीको प्रियतम बनाकर उससे प्रेम करते हैं), परंतु तुलसीदासजी कहते हैं कि [सच्चे प्रेमके नाते] मछलीसे बढ़कर पवित्र तीनों लोकोंमें दूसरा कोई नहीं है (मछली जलसे निष्काम प्रेम करती है और वियोग होते ही प्राण त्याग देती है; दूसरे ऐसा नहीं करते)॥ ३२०॥

अनन्यताकी महिमा

तुलसी जप तप नेम ब्रत सब सबहीं तें होइ।
लहै बड़ाई देवता इष्टदेव जब होइ॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जप, तप, नेम तथा व्रत आदि सब साधन सभीसे बन सकते हैं, परंतु मनुष्य बड़ाई तब पाता है, जब वह देवता (भगवान्)-को अपना [एकमात्र] इष्टदेव-प्रेमका देवता बना लेता है॥ ३२१॥

गाढ़े दिनका मित्र ही मित्र है

कुदिन हितू सो हित सुदिन हित अनहित किन होइ।
ससि छबि हर रबि सदन तउ मित्र कहत सब कोइ॥

भावार्थ—सुखके दिनोंमें चाहे कोई मित्र या शत्रु कुछ भी क्यों न हो (कोई महत्त्वकी बात नहीं है), सच्चा मित्र तो वही है जो बुरे (विपत्तिके) दिनोंमें प्रेम करता है। सूर्य अपने घरमें (अमावस्याके* दिन) चन्द्रमाकी शोभाको हरण कर लेता है, फिर भी उसको सब 'मित्र' ही कहते हैं (क्योंकि वह विपत्तिमें चन्द्रमाका हित करता है, अपनी किरणोंसे सदा उसे प्रकाश देता रहता है*)॥ ३२२॥

बराबरीका स्नेह दुःखदायक होता है

कै लघुकै बड़ मीत भल सम सनेह दुख सोइ।
तुलसी ज्यों घृत मधु सरिस मिलें महाबिष होइ॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि मित्र अपनेसे या तो छोटा हो या बड़ा हो, तभी कल्याण है; बराबरीका प्रेम तो दुःखदायक ही होता है। जैसे घी और मधु बराबर परिमाणमें मिल जानेसे भयंकर विष हो जाता है॥ ३२३॥

मित्रतामें छल बाधक है

मान्य मीत सों सुख चहैं सो न छुऐ छल छाहँ।
ससि त्रिसंकु कैकेइ गति लखि तुलसी मन माहँ॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जो कोई अपने सम्मान्य

---

* अमावस्याके दिन सूर्य और चन्द्र एक साथ रहते हैं। 'मित्र' सूर्यका नाम भी है।

मित्रसे सुख चाहता हो तो उसे चाहिये कि वह चन्द्रमा[१], त्रिशंकु[२] और कैकेयीकी[३] गतिको मनमें विचारकर छलकी छायाको भी न छुवे (अर्थात् किसी भी प्रकारसे छल न करे)॥ ३२४॥

कहिअ कठिन कृत कोमलहुँ हित हठि होइ सहाइ।
पलक पानि पर ओड़िअत समुझि कुघाइ सुघाइ॥

भावार्थ—सच्चा हितैषी उसीको कहना चाहिये, जो नरम (साधारण) या कठिन—कैसा भी काम पड़नेपर (हलकी या भारी विपत्तिके समय) स्वयं (बिना किसी अनुरोधके) हठ करके सहायता करे। जैसे आँखोंपर कोमल चोट होते हुए देखकर उसे पलकोंपर ओड़ लिया (रोक लिया) जाता है और शरीरपर भारी चोट होते हुए देखकर उसे हाथोंपर ओड़ लिया जाता है (आँखोंपर जरा-सा भी कोई आघात होनेको होता है तो पलकें तुरंत स्वाभाविक ही बंद होकर आँखोंको ढक लेती हैं और आघात स्वयं सह लेती हैं और सिरपर आघात लगनेकी आशंका होते ही हाथ स्वयमेव उसे बचानेके लिये ऊपर उठ जाते हैं और स्वयं चोट सह लेते हैं)॥ ३२५॥

वैर और प्रेम अंधे होते हैं

तुलसी बैर सनेह दोउ रहित बिलोचन चारि।
सुरा सेवरा आदरहिं निंदहिं सुरसरि बारि॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि वैर और प्रेम चारों आँखोंसे (अन्तर्दृष्टि एवं बाह्यदृष्टि दोनोंसे रहित) अंधे होते हैं। वैरी अपने द्वेषीके गुणोंको नहीं देखता और प्रेमी अपने प्रेमास्पदका दोष नहीं

१-चन्द्रमाने गुरुपत्नी-गमन किया, जिससे वह अबतक बदनाम है। चन्द्रको सभी कलंकी कहते हैं।

२-त्रिशंकुको गुरु वसिष्ठका अपमान करनेके कारण पहले चाण्डाल होना पड़ा और तत्पश्चात् विश्वामित्रजीके तपोबलसे सदेह स्वर्ग जाते हुए वापस उलटे मुँह गिरना और अध:लटकना पड़ा।

३-कैकेयीने अपने स्वामी दशरथसे छल करके तुरंत ही वैधव्य और सदाके लिये अपयश अपने सिर ले लिया।

देखता) और न इनको उचित-अनुचितका ज्ञान होता है। जैसे सेवड़ा (वाममार्गी साधक) शराबका [अत्यन्त निन्दनीय और त्याज्य होनेपर भी] आदर करते हैं और पवित्र गंगाजलकी निन्दा करते हैं॥ ३२६॥

दानी और याचकका स्वभाव

रुचै मागनेहि मागिबो तुलसी दानिहि दानु।
आलस अनख न आचरज प्रेम पिहानी जानु॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि भिखमंगेको माँगना और देनेवालेको दान देना ही अच्छा लगता है; अपने-अपने काममें (माँगने और देनेमें) न तो दोनोंको आलस्य आता है, न उद्वेग अथवा झुँझलाहट ही होती है और न आश्चर्य ही होता है; क्योंकि प्रेमको ही इन सब भावोंका ढक्कन समझो (माँगनेवालेको माँगनेसे तथा देनेवालेको दानसे स्वाभाविक प्रेम हो जाता है, जिससे ये सब बातें उनमें नहीं आ पातीं)॥ ३२७॥

प्रेम और वैर ही अनुकूलता और प्रतिकूलतामें हेतु हैं

अमिअ गारि गारेउ गरल गारि कीन्ह करतार।
प्रेम बैर की जननि जुग जानहिं बुध न गवाँर॥

भावार्थ—ब्रह्माजीने अमृत और विषको निचोड़कर (उनके साररूपमें) गालीको रचा है। इसलिये गाली, प्रेम और वैर दोनोंकी जननी (पैदा करनेवाली) है। इस बातको बुद्धिमान् पुरुष जानते हैं, गँवार नहीं (हँसी-मजाक या विवाहके समय दी जानेवाली गाली प्रेम उत्पन्न करती है और द्वेष, वैमनस्य या क्रोधसे दी हुई वैर पैदा करती है)॥ ३२८॥

स्मरण और प्रिय भाषण ही प्रेमकी निशानी है

सदा न जे सुमिरत रहहिं मिलि न कहहिं प्रिय बैन।
ते पै तिन्ह के जाहिं घर जिन्ह के हिएँ न नैन॥

भावार्थ—जो न तो सदा (कभी) याद करते हैं और न कभी मिलनेपर मीठे वचन ही बोलते हैं; उनके घर वे ही जाते हैं जिनके हियेकी आँखें फूटी होती हैं (अर्थात् जो महान् मूर्ख होते हैं)॥ ३२९॥

स्वार्थ ही अच्छाई-बुराईका मानदण्ड है

हित पुनीत सब स्वारथहिं अरि असुद्ध बिनु चाड़।
निज मुख मानिक सम दसन भूमि परे ते हाड़॥

भावार्थ—जबतक स्वार्थ है तबतक सभी वस्तुएँ पवित्र और हितकारी जान पड़ती हैं, बिना चाहकी वही चीजें (जो स्वार्थके समय पवित्र और हितकारी जान पड़ती थीं) अपवित्र और शत्रुके समान दिखायी देने लगती हैं। जैसे जबतक दाँत अपने मुँहमें रहते हैं, तबतक वे माणिकके समान मूल्यवान् होते हैं; परंतु वही टूटकर जब जमीनपर गिर पड़ते हैं, तब [अस्पृश्य] हाड़ कहलाते हैं॥ ३३०॥

संसारमें प्रेममार्गके अधिकारी बिरले ही हैं

माखी काक उलूक बक दादुर से भए लोग।
भले ते सुक पिक मोरसे कोउ न प्रेम पथ जोग॥

भावार्थ—संसारमें अधिकांश लोग तो मक्खी, कौए, उल्लू, बगुले और मेढकके सदृश (बिना ही कारण हानि करनेवाले, पर-निन्दारूपी मल भक्षण करनेवाले, भगवान्‌की ओरसे आँख मुँदे रखनेवाले, ऊपरसे सुन्दर वेष धारण कर अंदरसे छलनेकी इच्छा रखनेवाले और व्यर्थका बकवाद करनेवाले) हो गये हैं और जो कुछ भले लोग हैं, वे भी तोते, कोयल और मोरके सदृश (देखनेमें अच्छे, पर पलमें प्रेम तोड़कर भाग जानेवाले, बोलनेमें मधुर, परंतु स्वार्थी, शरीरसे सुन्दर परंतु कठोर-हृदय) हैं, प्रेमपथपर चलनेयोग्य तो कोई भी नहीं है॥ ३३१॥

कलियुगमें कपटकी प्रधानता

हृदयँ कपट बर बेष धरि बचन कहहिं गढ़ि छोलि।
अब के लोग मयूर ज्यों क्यों मिलिए मन खोलि॥

भावार्थ—आजकलके लोग तो मोरके समान हैं; वे सुन्दर वेश धारण करते हैं (ऊपरसे बहुत ही अच्छा, शिष्टतापूर्ण व्यवहार करते हैं) और अच्छी तरह बना-बनाकर बातें करते हैं; परंतु उनके हृदयमें

समान पीड़ा होती है) और धनवान् नीच मनुष्यसे वे मरनेपर भी (अत्यन्त विपत्तिमें भी) नहीं माँगेंगे (क्योंकि उससे माँगना उन्हें जलमें डूब जानेके समान प्राणघातक प्रतीत होता है। अत: वे अभावका कष्ट ही सहते रहते हैं)॥ ३३५॥

संग सरल कुटिलहि भएँ हरि हर करहिं निबाहु।
ग्रह गनती गनि चतुर बिधि कियो उदर बिनु राहु॥

भावार्थ—सरल (सज्जन) और कुटिल (दुष्ट)-का साथ हो जानेपर भगवान् विष्णु और शिव ही निर्वाह [रक्षा] करते हैं। राहुके ग्रहोंकी गणनामें गिने जानेपर चतुर ब्रह्माने उसको बिना पेटका बना दिया (यदि वह पेटहीन न होता तो उसका तथा अन्य ग्रहका संग मिलता ही नहीं; क्योंकि वह दुष्ट ग्रह होनेके कारण साथी सरल ग्रहोंको कभी खा डाले होता)॥ ३३६॥

स्वभावकी प्रधानता

नीच निचाई नहिं तजइ सज्जनहू कें संग।
तुलसी चंदन बिटप बसि बिनु बिष भए न भुअंग॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि सज्जनका संग होनेपर भी नीच मनुष्य अपनी नीचताको नहीं छोड़ता। चन्दनके वृक्षोंमें निवास करके भी साँप विषरहित नहीं हुए॥ ३३७॥

भलो भलाइहि पै लहइ लहइ निचाइहि नीचु।
सुधा सराहिअ अमरताँ गरल सराहिअ मीचु॥

भावार्थ—भला आदमी अपनी भलाईसे और नीच अपनी नीचतासे ही शोभा पाता है। अमृतकी प्रशंसा इसलिये की जाती है कि वह अमरत्व प्रदान करता है, और विष वही सराहनीय है जिससे [शीघ्र और सहज ही] मृत्यु हो जाय॥ ३३८॥

मिथ्या माहुर सज्जनहि खलहि गरल सम साँच।
तुलसी छुअत पराइ ज्यों पारद पावक आँच॥

भावार्थ—सज्जन पुरुषके लिये असत्य विष है और दुष्टके लिये सत्य विषके समान है। सज्जन असत्यको और दुष्ट सत्यको

छूते ही वैसे ही भाग जाते हैं जैसे अग्निकी आँच लगते ही पारा उड़ जाता है॥ ३३९॥

सत्संग और असत्संगका परिणामगत भेद

संत संग अपबर्ग कर कामी भव कर पंथ।
कहहिं संत कबि कोबिद श्रुति पुरान सदग्रंथ॥

भावार्थ—संतोंका संग मोक्ष (भवबन्धनसे छूटने)-का और विषयी पुरुषोंका संग संसारबन्धनमें पड़नेका मार्ग है। इस बातको संत, कवि, ज्ञानी और वेद-पुराणादि सद्ग्रन्थ सभी कहते हैं॥ ३४०॥

सुकृत न सुकृती परिहरइ कपट न कपटी नीच।
मरत सिखावन देइ चले गीधराज मारीच॥

भावार्थ—पुण्यात्मा पुरुष अपने पुण्यको और नीच, कपटी मनुष्य अपने कपटको मरते दमतक नहीं छोड़ते। जटायु और मारीच मरते-मरते इसी बातकी सीख दे गये हैं (जटायुने सीताके छुड़ानेके प्रयत्नमें परोपकारार्थ प्राण छोड़े और मारीचने मरते समय भी रामके-से स्वरमें 'हा लक्ष्मण' कहकर सीताजीको धोखा दिया)॥ ३४१॥

सज्जन और दुर्जनका भेद

सुजन सुतरु बन ऊख सम खल टंकिका रुखान।
परहित अनहित लागि सब साँसति सहत समान॥

भावार्थ—सज्जन पुरुष सुन्दर (लाभकारी) कपास और ऊखके पौधेके समान हैं और दुर्जन टाँकी और रुखानीके * समान। सज्जन और दुर्जन दोनों ही समानरूपसे कष्ट सहते हैं; परंतु सज्जन सहते हैं पराये हितके लिये और दुष्ट दूसरोंके अहितके लिये॥ ३४२॥

पिअहिं सुमन रस अलि बिटप काटि कोल फल खात।
तुलसी तरुजीवी जुगल सुमति कुमति की बात॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि [भ्रमर और भील दोनों ही वृक्षोंके सहारे जीते हैं, किंतु] भ्रमर फूलोंका रस ही पीते हैं (फूलोंको

* बढ़इयोंका लोहेका एक औजार।

भी नहीं चुनते) और कोल-भील वृक्षको काटकर उसका फल खाते हैं। यह सुबुद्धि और कुबुद्धिकी बात है॥ ३४३॥

अवसरकी प्रधानता

अवसर कौड़ी जो चुकै बहुरि दिएँ का लाख।
दुइज न चंदा देखिऐ उदौ कहा भरि पाख॥

भावार्थ—आवश्यकताके समय मनुष्य यदि कौड़ी देनेमें भी चूक जाय तो फिर [अनावश्यक बिना मौके] लाख रुपया देनेसे भी क्या होता है? द्वितीयाके चन्द्रमाको न देखा जाय तो फिर पक्षभर चन्द्रमा उदय होता रहे, उससे क्या होगा?॥ ३४४॥

भलाई करना बिरले ही जानते हैं

ग्यान अनभले को सबहि भले भलेहू काउ।
सींग सूँड़ रद लूम नख करत जीव जड़ घाउ॥

भावार्थ—बुराई करनेका ज्ञान तो सभीको है, परंतु भलाईका ज्ञान तो कभी किसी भलेको ही होता है। मूर्ख जानवर (गैंडा, हाथी, सिंह, चँवरी गाय, बंदर आदि) अपने सींग, सूँड़, दाँत, पूँछ तथा नख इत्यादिसे दूसरोंको चोट ही पहुँचाते हैं [उनसे भलाई करना नहीं जानते]॥ ३४५॥

संसारमें हित करनेवाले कम हैं

तुलसी जग जीवन अहित कतहुँ कोउ हित जानि।
सोषक भानु कृसानु महि पवन एक घन दानि॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जगत्‌में जीवोंका अहित करनेवाले बहुत हैं, हित करनेवाला तो कहीं कोई एकाध ही जानो। सूर्य, अग्नि, पृथ्वी, पवन सभी जलको सुखानेवाले हैं, देनेवाला तो एक बादल ही है॥ ३४६॥

सुनिअ सुधा देखिअहिं गरल सब करतूति कराल।
जहँ तहँ काक उलूक बक मानस सकृत मराल॥

भावार्थ—अमृत तो केवल सुननेमें ही आता है; परंतु विष जहाँ-तहाँ प्रत्यक्ष देखे जाते हैं। विधाताके सभी कार्य विकराल हैं। कौए, उल्लू

कपट रहता है। ऐसे लोगोंसे दिल खोलकर कैसे मिला जाय? (तात्पर्य यह है कि आजकल लोग ऊपरसे चिकनी-चुपड़ी बातें बनाना और देखनेमें सभ्यताका व्यवहार करना तो सीख गये हैं, परंतु उनके हृदयमें सरल प्रेम नहीं है, वे उस मयूरके समान हैं, जिसका शरीर बड़ा ही मनोहर और वाणी अत्यन्त मधुर होती है; परंतु जो हृदयका इतना कठोर होता है कि बड़े-बड़े जहरीले साँपोंको निगल जाता है)॥ ३३२॥

कपट अन्ततक नहीं निभता

चरन चोंच लोचन रँगौ चलौ मराली चाल।
छीर नीर बिबरन समय बक उघरत तेहि काल॥

भावार्थ—बगुला चाहे अपने चरण, चोंच और आँखोंको हंसकी तरह रँग ले और हंसकी-सी चाल भी चलने लगे; परंतु जिस समय दूध और जलको अलग-अलग करनेका अवसर आता है, उस समय उसकी पोल खुल जाती है॥ ३३३॥

कुटिल मनुष्य अपनी कुटिलताको नहीं छोड़ सकता

मिलै जो सरलहि सरल ह्वै कुटिल न सहज बिहाइ।
सो सहेतु ज्यों बक्र गति ब्याल न बिलहिं समाइ॥

भावार्थ—कुटिल मनुष्य अपने स्वभावको नहीं छोड़ सकता। यदि वह किसी सरलहृदय पुरुषसे सरल होकर मिलता भी है तो समझ लेना चाहिये कि उसके ऐसा करनेमें कोई-न-कोई हेतु अवश्य है। जैसे साँप टेढ़ी चालसे बिलमें नहीं घुस सकता [इसलिये बिलमें घुसनेके लिये वह उस समय टेढ़ी चाल छोड़कर सीधा हो जाता है, परंतु वास्तवमें उसकी स्वाभाविक टेढ़ी चाल नहीं मिटती]॥ ३३४॥

कृसधन सखहि न देब दुख मुएहुँ न मागब नीच।
तुलसी सज्जन की रहनि पावक पानी बीच॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि सज्जनोंकी स्थिति ऐसी हो जाती है जैसे आग और पानीके बीचमें रहना। वे थोड़ी पूँजीवाले मित्रसे तो धन माँगकर उसे कष्ट नहीं देंगे (ऐसा करनेमें उन्हें अग्निमें जलनेके

तुलसी चातक देत सिख सुतहि बारहीं बार।
तात न तर्पन कीजिऐ बिना बारिधर धार॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि चातक अपने पुत्रको बारंबार यही सीख देता है कि हे तात! [मेरे मरनेपर] प्यारे मेघकी धाराको छोड़कर अन्य किसी जलसे मेरा तर्पण न करना॥ ३०४॥

सोरठा

जिअत न नाई नारि चातक घन तजि दूसरहि।
सुरसरिहू को बारि मरत न माँगेउ अरध जल॥

भावार्थ—जीते-जी तो चातकने [प्यारे] मेघको छोड़कर दूसरेके सामने गर्दन नहीं झुकायी (याचना नहीं की) और मरते समय भी गंगाजलमें* अर्धजलीतक न माँगी (मुक्तिका भी निरादर कर दिया) ॥ ३०५॥

सुनु रे तुलसीदास प्यास पपीहहि प्रेम की।
परिहरि चारिउ मास जो अँचवै जल स्वाति को॥

भावार्थ—रे तुलसीदास! सुन, पपीहेको तो केवल प्रेमकी ही प्यास है [जलकी नहीं]; इसीलिये वह बरसातके चारों महीनोंके जलको छोड़कर केवल स्वाति-नक्षत्रका ही जल पीता है॥ ३०६॥

जाचै बारह मास पिऐ पपीहा स्वाति जल।
जान्यो तुलसीदास जोगवत नेही नेह मन॥

भावार्थ—चातक बारहों महीने मेघसे [उसे देखते ही, 'पिउ' 'पिउ' की पुकार मचाकर] जल माँगा करता है, परंतु पीता है केवल स्वाति-नक्षत्रका ही जल। तुलसीदासजी कहते हैं कि मैंने इससे यह समझा है कि चातक ऐसा करके अपने स्नेही मेघका मन रखता है (जिससे मेघको यह कहनेका मौका न मिले कि तू तो स्वार्थी है, जब प्यास लगती है, तभी मुझे पुकारता है, फिर सालभर मेरा नाम भी नहीं लेता)॥ ३०७॥

---

* मरते हुए आदमीको आधा गंगाजीमें और आधा बाहर रखते हैं, इसको 'अर्धजल' क्रिया कहते हैं। इस अवस्थामें जिसके प्राण छूटते हैं, उसकी सहज मुक्ति हो जाती है—ऐसा शास्त्रोंमें वर्णन आता है।

है और एक ही विश्वास है। एक रामरूपी श्यामघन (मेघ)-के लिये ही तुलसीदास चातक बना हुआ है॥ २७७॥

प्रेमकी अनन्यताके लिये चातकका उदाहरण

जौं घन बरषै समय सिर जौं भरि जनम उदास।
तुलसी या चित चातकहि तऊ तिहारी आस॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि हे रामरूपी मेघ! चाहे तुम ठीक समयपर बरसो (कृपाकी वृष्टि करो) चाहे जन्मभर उदासीन रहो—कभी न बरसो, परंतु इस चित्तरूपी चातकको तो तुम्हारी ही आशा है॥ २७८॥

चातक तुलसी के मतें स्वातिहुँ पिऐ न पानि।
प्रेम तृषा बाढ़ति भली घटें घटैगी आनि॥

भावार्थ—हे चातक! तुलसीदासके मतसे तो तू स्वाति नक्षत्रमें बरसा हुआ जल भी न पीना! क्योंकि प्रेमकी प्यासका बढ़ते रहना ही अच्छा है; घटनेसे तो प्रेमकी निष्ठा ही घट जायगी॥ २७९॥

रटत रटत रसना लटी तृषा सूखि गे अंग।
तुलसी चातक प्रेम को नित नूतन रुचि रंग॥

भावार्थ—अपने प्यारे मेघका नाम रटते-रटते चातककी जीभ लट गयी और प्यासके मारे सब अंग सूख गये। तुलसीदासजी कहते हैं कि तो भी चातकके प्रेमका रंग तो नित्य नया और सुन्दर ही होता जाता है॥ २८०॥

चढ़त न चातक चित कबहुँ प्रिय पयोद के दोष।
तुलसी प्रेम पयोधि की ताते नाप न जोख॥

भावार्थ—चातकके चित्तमें अपने प्रियतम मेघका दोष कभी आता ही नहीं। तुलसीदासजी कहते हैं कि इसीलिये प्रेमके अथाह समुद्रका कोई माप-तौल नहीं हो सकता (उसका थाह नहीं लगाया जा सकता)॥ २८१॥

बरषि परुष पाहन पयद पंख करौ टुक टूक।
तुलसी परी न चाहिऐ चतुर चातकहि चूक॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि मेघ (बादल) कठोर ओले बरसाकर भले ही चातककी पाँखोंके टुकड़े-टुकड़े कर दे, पर प्रेमके

काम-क्रोधादि एक-एक अनर्थकारक हैं फिर सबकी तो बात ही क्या है?

ग्रह ग्रहीत पुनि बात बस तेहि पुनि बीछी मार।
तेहि पिआइअ बारुनी कहहु काह उपचार॥

भावार्थ—जिसे कुग्रह लगे हों [अथवा जो पिशाचग्रस्त हो] फिर जो वायुरोगसे पीड़ित हो और उसीको फिर बिच्छू डंक मार दे, ऐसे तीन प्रकारसे पागल बने हुएको ऊपरसे शराब पिला दी जाय तो कहिये यह कैसा इलाज है?॥ २७१॥

किसके मनको शान्ति नहीं मिलती?

ताहि कि संपति सगुन सुभ सपनेहुँ मन बिश्राम।
भूत द्रोह रत मोहबस राम बिमुख रति काम॥

भावार्थ—जो मनुष्य मोहके वशीभूत होकर भूतप्राणियोंके द्रोहमें तत्पर है, श्रीरामसे विमुख है और भोगोंमें आसक्त हो रहा है; उसको क्या स्वप्नमें भी [दैवी] सम्पत्ति, शुभ शकुन या चित्तकी शान्ति प्राप्त हो सकती है?॥ २७२॥

ज्ञानमार्गकी कठिनता

कहत कठिन समुझत कठिन साधत कठिन बिबेक।
होइ घुनाच्छर न्याय जौं पुनि प्रत्यूह अनेक॥

भावार्थ—ज्ञान कहने (समझाने)-में कठिन है, समझनेमें कठिन है और साधन करनेमें भी कठिन है। यदि 'घुणाक्षर' न्यायसे* कहीं ज्ञान प्राप्त भी हो जाय तो फिर भी उस [के बचाये रखने]-में अनेकों विघ्न आते रहते हैं। (तात्पर्य यह है कि कहीं गुरुकृपासे परोक्ष ज्ञान हो ही जाता है, तो फिर भी अपरोक्षतक पहुँचनेमें बहुत-सी बाधाएँ आती हैं)॥ २७३॥

---

* काठमें जब घुन लग जाता है और उसे काटता है, तब उसमें कई तरहकी रेखाएँ बन जाती हैं। संयोगसे कोई रेखा अक्षर-जैसी बन जाय तो उसे 'घुणाक्षर' कहते हैं। इसी प्रकार बिना प्रयत्नके संयोगवश कोई घटना हो जाय तो उसे 'घुणाक्षर-न्याय' कहते हैं।

अभिमानका भारी बोझ सिरपर रखकर मूर्खलोग तोते, रेशमके कीड़े और बंदरकी तरह बलात् पराधीन हो जाते हैं*॥ २४३॥

जीव और दर्पणके प्रतिबिम्बकी समानता

केहिं मग प्रबिसति जाति केहिं कहु दरपनमें छाहँ।
तुलसी ज्यों जग जीव गति करी जीव के नाहँ॥

भावार्थ—भला बतलाओ तो दर्पणमें छाया किस रास्तेसे घुसती है और किस रास्तेसे निकल जाती है? तुलसीदासजी कहते हैं कि जीवोंके नाथ परमात्माने संसारमें जीवोंकी भी ऐसी ही चाल बनायी है (कौन किस रास्तेसे कहाँसे आता है और किस मार्गसे कहाँ चला जाता है, इस बातको कोई नहीं बतला सकता)॥ २४४॥

भगवन्मायाकी दुर्ज्ञेयता

सुखसागर सुख नींद बस सपने सब करतार।
माया मायानाथ की को जग जाननिहार॥

भावार्थ—सुखसागर परमात्मा ही जीवके रूपमें सुखकी नींद सो रहे हैं और स्वप्नवत् सब काम कर रहे हैं। मायाके स्वामीकी इस मायाको जाननेवाला जगत्में कौन है?॥ २४५॥

जीवकी तीन दशाएँ

जीव सीव सम सुख सयन सपनें कछु करतूति।
जागत दीन मलीन सोइ बिकल बिषाद बिभूति॥

भावार्थ—जीव सुखसे सोनेके समय (सुषुप्तिमें) शिव (परमात्मा)-के समान है, स्वप्नमें कुछ कार्य करता है (अनेक प्रकारकी सृष्टि रचता है) और जागतेमें (जाग्रदवस्थामें) वही दीन-मलीन हो जाता है और

* तोता फिरनेवाली लकड़ीपर बैठकर लकड़ी घूमते ही उलट जाता है और पंजोंसे लकड़ीको पकड़े रखकर अपनेको बँधा मानता है और पकड़ा जाता है। रेशमका कीड़ा आप ही कोश बनाकर उसमें बँध जाता है और मारा जाता है। इसी प्रकार बंदर छोटे मुँहकी हँडियामें चनेके लोभसे हाथ डालकर चने मुट्ठीमें भरकर मुट्ठी बंद कर लेता है, चनोंके लालचसे मुट्ठी खोलता नहीं और फलस्वरूप पकड़ा जाता है।

और बगुले जहाँ-तहाँ (सर्वत्र) दिखायी देते हैं; परंतु हंस तो केवल एक मानसरोवरमें ही मिलते हैं [दूसरोंकी बुराई करनेवाले नीच सभी जगह मिलते हैं, परंतु परहितमें लगे हुए संत तो सत्संगमें ही मिलते हैं] ॥ ३४७ ॥

जलचर थलचर गगनचर देव दनुज नर नाग।
उत्तम मध्यम अधम खल दस गुन बढ़त बिभाग॥

भावार्थ—जलमें रहनेवाले, स्थलपर रहनेवाले और आकाशमें विचरनेवाले जीवों तथा देवता, राक्षस, मनुष्य और नाग—इन सब योनियोंमें उत्तमकी अपेक्षा मध्यम, मध्यमकी अपेक्षा अधम और अधमकी अपेक्षा नीच—दुष्ट प्राणियोंकी संख्या दसगुनी अधिक हो जाती है (उत्तमसे मध्यम दसगुने, मध्यमसे अधम दसगुने और अधमसे नीच दसगुने हैं, उत्तम बहुत ही थोड़े हैं) ॥ ३४८ ॥

बलि मिस देखे देवता कर मिस मानव देव।
मुए मार सुबिचार हत स्वारथ साधन एव॥

भावार्थ—बलिदानके बहाने देवताओंको और राज्य-कर (दण्ड)-के बहाने राजाओंको देख लिया। दोनों ही स्वार्थ साधनेवाले विचार-शून्य और मरेको ही मारनेवाले हैं॥ ३४९ ॥

सुजन कहत भल पोच पथ पापि न परखइ भेद।
करमनास सुरसरित मिस बिधि निषेध बद बेद॥

भावार्थ—कर्मनाशा और गंगाजीके बहाने जैसे वेद विधि और निषेध दोनों तरहके कर्मोंका वर्णन करते हैं (कर्मनाशामें नहानेका निषेध है और गंगास्नानकी विधि है) वैसे ही सत्पुरुष [ग्रहण और त्यागके लिये] भले-बुरे दोनों ही मार्ग बतलाते हैं, परंतु पापी मनुष्य इस भेदको नहीं समझते हैं॥ ३५० ॥

वस्तु ही प्रधान है, आधार नहीं

मनि भाजन मधु पारई पूरन अमी निहारि।
का छाँड़िअ का संग्रहिअ कहहु बिबेक बिचारि॥

भावार्थ—शराबसे भरे हुए मणिमय पात्र और अमृतसे पूर्ण मिट्टीके

बर्तनको देखकर जरा विवेकपूर्वक विचारकर कहो कि इन दोनोंमें किसका त्याग करना चाहिये और किसका ग्रहण? (तात्पर्य यह है कि उत्तम वस्तु सामान्य स्थानमें हो तो भी उसे लेना चाहिये, परंतु बुरी वस्तु उत्तम स्थानमें हो तो भी उसका त्याग ही करना चाहिये) ॥ ३५१ ॥

प्रीति और वैरकी तीन श्रेणियाँ

उत्तम मध्यम नीच गति पाहन सिकता पानि।
प्रीति परिच्छा तिहुन की बैर बितिक्रम जानि॥

भावार्थ—प्रीतिकी परीक्षामें उत्तम, मध्यम और नीच—इन तीनोंकी स्थिति क्रमशः पत्थर, बालू और जलके समान है (अर्थात् उत्तम पुरुषकी प्रीति पत्थरकी लीकके समान अमिट है, मध्यम मनुष्यकी प्रीति बालूकी रेखाके समान—दूसरी हवा न लगनेतक ही है और नीचकी प्रीति तो जलकी लकीरके समान है। जैसे अँगुलीसे जलमें लकीर करते जाइये, साथ-ही-साथ वह मिटती चली जायगी, ऐसे ही नीचकी प्रीति तत्काल नष्ट हो जाती है); परंतु वैर इसके विपरीत (उत्तम पुरुषका जलकी लकीरके समान तत्काल नष्ट होनेवाला, मध्यमका बालूकी रेखाके समान कुछ समयतक रहनेवाला और नीचका पत्थरकी लकीरके सदृश चिरस्थायी होता है) ॥ ३५२ ॥

जिसे सज्जन ग्रहण करते हैं, उसे दुर्जन त्याग देते हैं

पुन्य प्रीति पति प्रापतिउ परमारथ पथ पाँच।
लहहिं सुजन परिहरहिं खल सुनहु सिखावन साँच॥

भावार्थ—पुण्य, प्रेम, प्रतिष्ठा, प्राप्ति (लौकिक लाभ) और परमार्थका पथ—इन पाँचोंको सज्जनगण तो ग्रहण करते हैं और दुष्टलोग त्याग देते हैं। इस सच्ची सीखको सुनो॥ ३५३ ॥

प्रकृतिके अनुसार व्यवहारका भेद भी आवश्यक है

नीच निरादरहीं सुखद आदर सुखद बिसाल।
कदरी बदरी बिटप गति पेखहु पनस रसाल॥

भावार्थ—नीच लोग निरादर करनेसे और बड़े लोग आदर करनेसे सुखदायी होते हैं। इस बातको समझनेके लिये केले और बेर तथा

कटहल और आमके पेड़ोंकी दशा देखो (केला तथा बेर काटे जानेपर अधिक फल देते हैं, परंतु कटहल और आम सींचने और सेवा करनेपर ही फलते हैं)॥ ३५४॥

अपना आचरण सभीको अच्छा लगता है

तुलसी अपनो आचरन भलो न लागत कासु।
तेहि न बसात जो खात नित लहसुनहू को बासु॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि अपना आचरण किसको अच्छा नहीं लगता? जो नित्य लहसुन खाता है, उसको लहसुनकी दुर्गन्ध नहीं मालूम होती॥ ३५५॥

भाग्यवान् कौन है?

बुध सो बिबेकी बिमलमति जिन्ह कें रोष न राग।
सुहृद सराहत साधु जेहि तुलसी ताको भाग॥

भावार्थ—वे पुरुष निर्मल बुद्धिवाले, ज्ञानवान् और बुद्धिमान् हैं जिनका न किसीमें राग (आसक्ति) है, न किसीके प्रति क्रोध (द्वेष) है; किंतु साधुजन जिन्हें सुहृद् (सबका अकारण हितू) कहकर सराहना करते हैं, तुलसीदासजी कहते हैं वे बड़े ही भाग्यशाली हैं॥ ३५६॥

साधुजन किसकी सराहना करते हैं

आपु आपु कहँ सब भलो अपने कहँ कोइ कोइ।
तुलसी सब कहँ जो भलो सुजन सराहिअ सोइ॥

भावार्थ—स्वयं अपने लिये सभी भले हैं (सभी अपनी भलाई करना चाहते हैं), कोई-कोई अपनोंकी (मित्र-बान्धवोंकी) भी भलाई करनेवाले होते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि जो सबकी भलाई करनेवाला (सुहृद्) है, साधुजनोंके द्वारा उसीकी सराहना होती है॥ ३५७॥

संगकी महिमा

तुलसी भलो सुसंग तें पोच कुसंगति सोइ।
नाउ किंनरी तीर अति लोह बिलोकहु लोइ॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि अच्छी संगतिसे मनुष्य

अच्छा और बुरी संगतिसे बुरा हो जाता है। हे लोगो! देखो, जो लोहा नावमें लगनेसे सबको पार उतारनेवाला और सितारमें लगनेसे मधुर संगीत सुनाकर सुख देनेवाला बन जाता है, वही तलवार और तीरमें लगनेसे जीवोंका प्राणघातक हो जाता है॥ ३५८॥

गुरु संगति गुरु होइ सो लघु संगति लघु नाम।
चार पदारथ में गनैं नरक द्वारहू काम॥

भावार्थ—बड़ोंकी संगतिसे मनुष्य बड़ा (सम्मान्य) हो जाता है और छोटोंकी संगतिसे उसीका नाम छोटा हो जाता है। अर्थ, धर्म और मोक्षके साथ रहनेसे नरकके साक्षात् द्वार कामकी भी गिनती चार पदार्थोंमें होती है॥ ३५९॥

तुलसी गुरु लघुता लहत लघु संगति परिनाम।
देवी देव पुकारिअत नीच नारि नर नाम॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि नीच मनुष्योंकी संगतिका यह परिणाम होता है कि बड़े महत्त्ववाले पुरुष भी लघुताको प्राप्त हो जाते हैं। नीच स्त्री-पुरुषोंके नाम होनेसे देवी-देवता भी लघुतासे ही पुकारे जाते हैं॥ ३६०॥

तुलसी किएँ कुसंग थिति होहिं दाहिने बाम।
कहि सुनि सकुचिअ सूम खल गत हरि संकर नाम॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि कुसंगतिमें स्थित रहनेसे अच्छे भी बुरे हो जाते हैं। हरि, शंकर आदि भगवान्‌के नाम परम कल्याणकारी हैं, परंतु वही नाम कंजूस और दुष्ट पुरुषोंके रख दिये जाते हैं तो लोग उन नामोंको कहते-सुनते सकुचाते हैं॥ ३६१॥

बसि कुसंग चह सुजनता ताकी आस निरास।
तीरथहू को नाम भो गया मगह के पास॥

भावार्थ—कुसंगतिमें निवास करके जो सज्जनताकी आशा करता है, उसकी आशा निराशामात्र है। मगधके पास बसनेसे पवित्र विष्णुपद तीर्थका नाम भी 'गया' (गया-बीता) पड़ गया॥ ३६२॥

राम कृपाँ तुलसी सुलभ गंग सुसंग समान।
जो जल परै जो जन मिलै कीजै आपु समान॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि गंगाजी और सत्संगति दोनों समान हैं। गंगाजीमें कैसा भी जल पड़े और सत्संगतिमें कैसा भी दुर्जन मनुष्य जाय, उसको ये दोनों अपने ही समान पवित्र बना देती हैं। परंतु इनकी प्राप्ति श्रीरामकृपासे ही सुलभ है॥ ३६३॥

ग्रह भेषज जल पवन पट पाइ कुजोग सुजोग।
होहिं कुबस्तु सुबस्तु जग लखहिं सुलच्छन लोग॥

भावार्थ—ग्रह, ओषधि, जल, वायु और वस्त्र—ये सभी बुरा या अच्छा संग पाकर जगत्‌में बुरे या अच्छे पदार्थ बन जाते हैं। इस रहस्यको अच्छे लक्षणवाले बुद्धिमान् लोग ही जान पाते हैं॥ ३६४॥

जनम जोग में जानिअत जग बिचित्र गति देखि।
तुलसी आखर अंक रस रंग बिभेद बिसेषि॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जैसे अक्षर (क, ख, ग आदि), अंक (१, २, ३ आदि), रस (मीठामें खट्टा आदि) और रंग (नीला, लाल, पीला आदि)-में [इनके परस्पर संयोगके भेदसे] विशेष भेद हो जाता है, ऐसे ही मनुष्यके जन्मकालमें भिन्न-भिन्न ग्रहोंका योग होता है; उसीको देखकर जगत्‌की विचित्र गति जानी जाती है॥ ३६५॥

आखर जोरि बिचार करु सुमति अंक लिखि लेखु।
जोग कुजोग सुजोग मय जग गति समुझि बिसेषु॥

भावार्थ—अक्षरोंको जोड़कर विचार करो और हे सुमति! अंकोंको लिखकर हिसाब लगाओ तो भलीभाँति समझ जाओगे कि जगत्‌की गति योगसे कुयोग और सुयोगमयी हो जाती है ('धर्म' के पहले 'अ' अक्षर जोड़ दो, अधर्म हो जायगा और अधर्मके आगे 'हीन' ये दो अक्षर जोड़ दो तो 'अधर्म' से रहित अर्थ हो जायगा; इसी प्रकार १ अंकके आगे ०० दो शून्य लगा दो तो १०० हो जायगा, वही शून्य पहले लगा दो तो उस

एकको भी कोई नहीं गिनेगा। इसी तरह कुसंगति-सुसंगतिसे जगत्में मनुष्य बुरा-भला हो जाता है)॥ ३६६॥

मार्ग-भेदसे फल-भेद

करु बिचार चलु सुपथ भल आदि मध्य परिनाम।
उलटि जपें 'जारा मरा' सूधें 'राजा राम'॥

भावार्थ—विचार करके सुमार्गपर चलो, ऐसा करनेसे आदि, मध्य और परिणाममें भला-ही-भला है। जैसे बिना विचारे उलटा जपनेसे जो शब्द 'जारा' और 'मरा' हो जाता है वही विचारपूर्वक सीधा जपनेसे 'राजा राम' हो जाता है (जो कल्याणमय है)॥ ३६७॥

भलेके भला ही हो, यह नियम नहीं है

होइ भले कें अनभलो होइ दानि कें सूम।
होइ कपूत सपूत कें ज्यों पावक में धूम॥

भावार्थ—जैसे पवित्र तेजोमय अग्निसे काला धुआँ निकलता है, वैसे ही भलेके बुरा, दानीके कंजूस और सुपूतके कुपूत उत्पन्न हो जाता है॥ ३६८॥

विवेककी आवश्यकता

जड़ चेतन गुन दोष मय बिस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार॥

भावार्थ—विधाताने इस जड़-चेतन विश्वको गुण-दोषमय रचा है; परंतु संतरूपी हंस दोषरूपी जलको त्यागकर गुणरूपी दूधको ग्रहण करते हैं॥ ३६९॥

सोरठा

पाट कीट तें होइ तेहि तें पाटंबर रुचिर।
कृमि पालइ सबु कोइ परम अपावन प्रान सम॥

भावार्थ—रेशम कीड़ेसे होता है, उससे सुन्दर रेशमी वस्त्र बनते हैं। इसीलिये अत्यन्त अपवित्र कीड़ोंको भी सब लोग प्राणोंके समान पालते हैं॥ ३७०॥

दोहा

जो जो जेहिं जेहिं रस मगन तहँ सो मुदित मन मानि।
रसगुन दोष बिचारिबो रसिक रीति पहिचानि॥

भावार्थ—जो-जो जिस-जिस रसमें मग्न होता है, वह उसीमें संतोष मानकर आनन्दित होता है। परंतु रसके गुण-दोषका विचार करना तो रसिकोंकी रीतिकी पहचान है (अर्थात् रसके गुण-दोषका विचार तो रसिकजन ही करते हैं)॥ ३७१॥

सम प्रकास तम पाख दुहुँ नाम भेद बिधि कीन्ह।
ससि सोषक पोषक समुझि जग जस अपजस दीन्ह॥

भावार्थ—यद्यपि शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्षोंमें उजियाला और अँधेरा बराबर रहता है, तो भी विधाताने उनके नाममें भेद कर दिया है। शुक्लपक्षको चन्द्रमाका पोषक (कलाको बढ़ानेवाला) जानकर उसे जगत्‌में यश दिया अर्थात् यशरूप 'शुक्लपक्ष' नाम रखा और कृष्णपक्षको चन्द्रमाका शोषक (कलाओंको घटानेवाला) जानकर उसे अयश दिया अर्थात् कलंकरूप 'कृष्णपक्ष' नाम रखा॥ ३७२॥

कभी-कभी भलेको बुराई भी मिल जाती है

लोक बेदहू लौं दगो नाम भले को पोच।
धर्मराज जम गाज पबि कहत सकोच न सोच॥

भावार्थ—लोक और वेदतकमें भी भलेका बुरा नाम प्रसिद्ध है। धर्मराजको यम और बिजलीको वज्र कहनेमें किसीको सोच अथवा संकोच नहीं होता॥ ३७३॥

सज्जन और दुर्जनकी परीक्षाके भिन्न-भिन्न प्रकार

बिरुचि परखिऐ सुजन जन राखि परखिऐ मंद।
बड़वानल सोषत उदधि हरष बढ़ावत चंद॥

भावार्थ—संतोंकी परख तो हमारी रुचिके बिना ही हो जाती है (उनके सरल पवित्र स्वभावसे और उनकी कृपासे हमारे बिना ही

प्रयत्न उनका परिचय मिल जाता है), परंतु दुष्ट मनुष्यकी परीक्षा कुछ दिन पास रखकर करनी पड़ती है (सहज ही उसके कपटको पहचानना कठिन होता है)। बड़वानल समुद्रमें बहुत दिन रहनेके बाद समुद्रके जलको सोखता है, परंतु चन्द्रमा दर्शन देते ही समुद्रके हर्षको बढ़ाता है॥ ३७४॥

नीच पुरुषकी नीचता

प्रभु सनमुख भएँ नीच नर होत निपट बिकराल।
रबिरुख लखि दरपन फटिक उगिलत ज्वालाजाल॥

भावार्थ—मालिकके अनुकूल होनेपर नीच मनुष्य [अभिमानके मारे] एकदम भयंकर बन जाते हैं। जैसे दर्पण और स्फटिक सूर्यका रुख अपनी तरफ देखकर आगकी लपटें उगलने लगते हैं॥ ३७५॥

सज्जनकी सज्जनता

प्रभु समीप गत सुजन जन होत सुखद सुबिचार।
लवन जलधि जीवन जलद बरषत सुधा सुबारि॥

भावार्थ—मालिकके पास रहनेसे सज्जन पुरुष सबको सुख देनेवाले हो जाते हैं, इस बातको अच्छी तरह विचार लो। बादलका जीवन खारे समुद्रका जल है; परंतु वह दूसरोंके लिये [खारा जल न देकर] सुन्दर अमृतके समान जल बरसाता है॥ ३७६॥

नीच निरावहिं निरस तरु तुलसी सींचहिं ऊख।
पोषत पयद समान सब बिष पियूष के रूख॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि नीच मनुष्य रसहीन (सूखे) वृक्षोंको तो खेतसे उखाड़ फेंकते हैं और रसवाले ऊखको सींचते हैं; परंतु बादल (जल बरसाकर) विष और अमृत दोनों प्रकारके वृक्षोंका समानरूपसे पोषण करता है॥ ३७७॥

बरषि बिस्व हरषित करत हरत ताप अघ प्यास।
तुलसी दोष न जलद को जो जल जरै जवास॥

भावार्थ—बादल तो बरसकर समस्त विश्वको प्रसन्न करता है

और सबके ताप (गर्मी), दु:ख और प्यासको हरण करता है। तुलसीदासजी कहते हैं कि यदि उसके जलसे जवासा जल जाय तो इसमें बादलका कोई दोष नहीं है॥ ३७८॥

अमर दानि जाचक मरहिं मरि मरि फिरि फिरि लेहिं।
तुलसी जाचक पातकी दातहि दूषन देहिं॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि दाता अमर रहते हैं (उनकी कीर्ति संसारमें बनी रहती है) और याचक मरते हैं (माँगना मरनेके तुल्य ही है), बार-बार मरते हैं और बार-बार दान लेते हैं। फिर भी वे पापी याचक दाताको सदा दोष ही देते रहते हैं॥ ३७९॥

नीच-निन्दा

लखि गयंद लै चलत भजि स्वान सुखानो हाड़।
गज गुन मोल अहार बल महिमा जान कि राड़॥

भावार्थ—हाथीको देखकर कुत्ता सूखे हाड़को लेकर दौड़ जाता है (समझता है, कहीं हाथी इस हाड़को छीन न ले)। वह मूर्ख हाथीके गुण, मूल्य, आहार और बलकी महिमाको क्या जाने?॥ ३८०॥

सज्जनमहिमा

कै निदरहुँ कै आदरहुँ सिंघहि स्वान सिआर।
हरष बिषाद न केसरिहि कुंजर गंजनिहार॥

भावार्थ—कुत्ते और सियार सिंहका निरादर करें, चाहे आदर करें, हाथीको पछाड़नेवाले सिंहको इसमें कोई हर्ष या शोक नहीं होता (वह कुत्ते-सियारोंकी ओर ताकता ही नहीं)॥ ३८१॥

दुर्जनोंका स्वभाव

ठाढ़ो द्वार न दै सकैं तुलसी जे नर नीच।
निंदहिं बलि हरिचंद को का कियो करन दधीच॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जो मनुष्य नीच प्रकृतिके हैं, वे स्वयं तो द्वारपर खड़े हुए भिक्षुकको कुछ भी नहीं दे सकते,

परंतु बलि और हरिश्चन्द्रकी निन्दा करते हैं और कहते हैं कि कर्ण और दधीचिने कौन बड़ा काम किया था?॥ ३८२॥

नीचकी निन्दासे उत्तम पुरुषोंका कुछ नहीं घटता

ईस सीस बिलसत बिमल तुलसी तरल तरंग।
स्वान सरावग के कहें लघुता लहै न गंग॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जिन श्रीगंगाजीकी निर्मल और तरल तरंगें भगवान् श्रीशंकरके मस्तकपर शोभा पाती हैं, उन श्रीगंगाजीकी महिमामें कुत्ते और सरावगियोंके कहनेसे कुछ कमी नहीं हो जाती॥ ३८३॥

तुलसी देवल देव को लागे लाख करोरि।
काक अभागें हगि भर्‌यो महिमा भई कि थोरि॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि—जिस देवमन्दिरके बनवानेमें लाखों-करोड़ों रुपये लगे हों, उसमें यदि अभागे कौएने बीट कर दी तो इससे उस मन्दिरकी महिमा थोड़े ही घट गयी। वह तो ज्यों-की-त्यों बनी रहती है॥ ३८४॥

गुणोंका ही मूल्य है, दूसरोंके आदर-अनादरका नहीं

निज गुन घटत न नाग नग परखि परिहरत कोल।
तुलसी प्रभु भूषन किए गुंजा बढ़े न मोल॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जंगली कोल लोग गजमुक्ताको परखकर फेंक देते हैं, इससे उसका गुण घट नहीं जाता। इसके विपरीत भगवान् श्रीकृष्णने गुंजा (घुँघची)-के गहने बनाकर पहने, परंतु इससे उनकी कीमत बढ़ नहीं गयी॥ ३८५॥

श्रेष्ठ पुरुषोंकी महिमाको कोई नहीं पा सकता

राकापति षोड़स उअहिं तारा गन समुदाइ।
सकल गिरिन्ह दव लाइअ बिनु रबि राति न जाइ॥

भावार्थ—चाहे चन्द्रमा समस्त तारागणको साथ लेकर और

सोलह कलाओंसे पूर्ण होकर उदय हो जाय और साथ ही सभी पहाड़ोंमें आग भी लगा दी जाय, तो भी सूर्यके उदय हुए बिना रात्रि नहीं जा सकती॥ ३८६॥

दुष्ट पुरुषोंद्वारा की हुई निन्दा-स्तुतिका कोई मूल्य नहीं है

भलो कहहिं बिनु जानेहूँ बिनु जानें अपबाद।
ते नर गादुर जानि जियँ करिय न हरष बिषाद॥

भावार्थ—जो लोग बिना ही जाने-सुने किसीको भला बताने लगते हैं और बिना ही जाने किसीकी निन्दा करने लगते हैं, उन मनुष्योंको [उसी मुखसे खाने और उसीसे मलत्याग करनेवाले] चमगादड़ समझकर उनके कहनेसे अपने मनमें हर्ष-विषाद नहीं करना चाहिये॥ ३८७॥

डाह करनेवालोंका कभी कल्याण नहीं होता

पर सुख संपति देखि सुनि जरहिं जे जड़ बिनु आगि।
तुलसी तिन के भागते चलै भलाई भागि॥

भावार्थ—दूसरेकी सुख-सम्पत्तिको देख-सुनकर जो मूर्ख मनुष्य बिना ही आगके जलने लगते हैं, तुलसीदासजी कहते हैं कि उनके भाग्यसे भलाई भागकर चली जाती है (उनका कभी भला नहीं होता)॥ ३८८॥

दूसरोंकी निन्दा करनेवालोंका मुँह काला होता है

तुलसी जे कीरति चहहिं पर की कीरति खोइ।
तिनके मुँह मसि लागिहैं मिटिहि न मरिहै धोइ॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जो दूसरोंकी कीर्तिको मिटाकर अपनी कीर्ति चाहते हैं, उनके मुखपर ऐसी कालिख लगेगी, जो चाहे वे उसे धो-धोकर मर जायँ, कभी नहीं छूटेगी॥ ३८९॥

मिथ्या अभिमानका दुष्परिणाम

तनु गुन धन महिमा धरम तेहि बिनु जेहि अभिमान।
तुलसी जिअत बिडंबना परिनामहु गत जान॥

भावार्थ—सुन्दर शरीर, सद्‌गुण, पर्याप्त धन, बड़ाई और धर्ममें निष्ठा—इनके न होनेपर भी जिसको मिथ्या अभिमान है—तुलसीदासजी कहते हैं—उनका जीवन विडम्बनामात्र है (जीवनकालमें उसकी बदनामी ही होती है) और उसका परिणाम भी गया-बीता (बुरा) ही समझना चाहिये (मरनेपर भी उसे सद्‌गति नहीं मिलती)॥ ३९०॥

नीचा बनकर रहना ही श्रेष्ठ है

सासु ससुर गुरु मातु पितु प्रभु भयो चहै सब कोइ।
होनी दूजी ओर को सुजन सराहिअ सोइ॥

भावार्थ—सास, ससुर, गुरु, माता-पिता और मालिक इत्यादि होना (बड़े बनकर हुक्म चलाना और सेवा कराना) तो सभी चाहते हैं; परंतु जो लोग इनके दूसरी तरफके अर्थात् बहू, दामाद, शिष्य, कन्या, पुत्र और सेवक बनना (नीचे पदमें रहकर आज्ञा मानना और सेवा करना) चाहते हैं, वही सज्जन सराहनेयोग्य हैं॥ ३९१॥

सज्जन स्वाभाविक ही पूजनीय होते हैं

सठ सहि साँसति पति लहत सुजन कलेस न कायँ।
गढ़ि गुढ़ि पाहन पूजिए गंडकि सिला सुभायँ॥

भावार्थ—दुष्टलोग बड़े-बड़े कष्ट सहकर तब कहीं प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं; परंतु सज्जनोंको (प्रतिष्ठाप्राप्तिमें) कुछ भी शारीरिक क्लेश नहीं होता। जैसे साधारण पत्थर जब गढ़-छुलकर मूर्तिके रूपमें आते हैं तब पूजे जाते हैं; परंतु गण्डकी नदीके पत्थर (शालग्रामशिला) स्वाभाविक ही पूजनीय होते हैं॥ ३९२॥

भूप-दरबारकी निन्दा

बड़े बिबुध दरबार तें भूमि भूप दरबार।
जापक पूजत पेखिअत सहत निरादर भार॥

भावार्थ—देवताओंके दरबारसे भी पृथ्वीके राजाओंके दरबार बड़े हैं; क्योंकि इनमें (राजाओंके दरबारमें) भगवान्‌के नामका जप करनेवाले और भगवान्‌की पूजा करनेवाले भी बड़ा भारी अपमान सहते देखे जाते हैं (जो देवताओंके दरबारमें असम्भव है)॥ ३९३॥

छल-कपट सर्वत्र वर्जित है

बिनु प्रपंच छल भीख भलि लहिअ न दिएँ कलेस।
बावन बलि सों छल कियो दियो उचित उपदेस॥

भावार्थ—बिना छल-कपटके मिलनेवाली भीख ही उत्तम है, किसीको क्लेश पहुँचाकर भीख नहीं लेनी चाहिये। भगवान्‌ने वामनरूप धरकर बलिसे छल किया और इसी बहाने सबको उपदेश दिया (कि छल करना बहुत बुरा है, छल करनेके कारण ही मुझे पातालमें बलिका द्वारपाल बनना पड़ा है)॥ ३९४॥

भलो भले सों छल किएँ जनम कनौड़ो होइ।
श्रीपति सिर तुलसी लसति बलि बावन गति सोइ॥

भावार्थ—भला आदमी यदि किसी भले आदमीसे छल कर बैठता है तो उसे फिर जन्मभर उससे दबकर रहना पड़ता है। भगवान् लक्ष्मीपतिने वृन्दासे छल किया था, इससे वह तुलसीके रूपमें भगवान्‌के सिरपर विराजमान रहती है; और भगवान् वामनजीने राजा बलिसे छल किया, तो उनकी भी वही गति हुई (उन्हें उसका द्वारपाल बनकर रहना पड़ा)॥ ३९५॥

बिबुध काज बावन बलिहि छलो भलो जिय जानि।
प्रभुता तजि बस भे तदपि मन की गइ न गलानि॥

भावार्थ—भगवान् वामनजीने अपने मनमें अच्छा समझकर ही देवताओंके कार्यके लिये बलिको छला, फिर अपना स्वामित्व छोड़कर

उसके वशमें भी हो गये अर्थात् उसके द्वारपालतक बन गये तो भी [छल करनेके कारण] उनके मनकी ग्लानि नहीं मिटी॥ ३९६॥

जगत्में सब सीधोंको तंग करते हैं

सरल बक्र गति पंच ग्रह चपरि न चितवत काहु।
तुलसी सूधे सूर ससि समय बिडंबित राहु॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि सीधी-टेढ़ी (दोनों प्रकारकी) चाल चलनेवाले (मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि—इन) पाँच ग्रहोंमेंसे तो किसीको राहु जल्दी आँख उठाकर देखता भी नहीं, परंतु सीधी चालवाले सूर्य और चन्द्रमाको समयपर वही राहु त्रास देता है (भाव यह कि टेढ़ोंसे सभी डरते हैं और सीधोंको सभी खानेको तैयार रहते हैं)॥ ३९७॥

दुष्ट-निन्दा

खल उपकार बिकार फल तुलसी जान जहान।
मेढुक मर्कट बनिक बक कथा सत्य उपखान॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि इस बातको तमाम दुनिया जानती है कि दुष्टोंके साथ उपकार करनेका फल बुरा होता है। सत्योपाख्यान नामक ग्रन्थमें लिखी हुई मेढक, बंदर, वणिक् और बगुलेकी कथाएँ इसके उदाहरण हैं॥ ३९८॥

१-एक मेढकने अपने विरोधी कुटुम्बियोंका नाश करानेके लिये एक साँपको बुलाया। उसने सोचा कि साँपको पेटभर भोजन मिलेगा तो वह मेरा उपकार मानेगा और विरोधियोंका नाश हो जायगा। साँपने आकर उसके सब कुटुम्बियोंको खा डाला और फिर उस मेढकको भी खानेके लिये तैयार हो गया। उसने किसी तरह अपनी जान बचायी।

२-एक बंदरकी किसी मगरसे दोस्ती थी। बंदर अपने दोस्त मगरको जंगलसे ला-लाकर मीठे फल खिलाया करता था। एक दिन मगर अपनी स्त्रीके कहनेसे बंदरको पीठपर चढ़ाकर छलसे

पानीमें ले आया और उसका कलेजा निकालना चाहा। बुद्धिमान् बंदरने उसके कपटको जानकर मगरसे कहा कि 'भाई! मैं तो कलेजा घर छोड़ आया।' मूर्ख मगरने उससे कहा—'अच्छा जाओ, उसे ले आओ।' मगर उसे पीठपर चढ़ाकर किनारे ले गया। बंदरने पानीसे बाहर कूदकर अपनी जान बचायी।

३-एक वणिक्‌की राजासे मित्रता थी। राजाको किसी मन्त्रसिद्धिके लिये एक स्त्रीकी पूजा करनी थी। राजाने इसके लिये वणिक्‌से उसकी स्त्रीको माँगा। वणिक्‌ने विश्वास करके स्त्रीको राजाके महलमें भेज दिया। राजाके मनमें पाप आ गया और उसने स्त्रीपर बलात्कार किया। वणिक्‌को इससे बड़ा ही दुःख पहुँचा।

४-एक बगुलेने किसी आदमीको धनका खजाना बतलाया। परंतु उसने उपकार न मानकर उलटे उसीको मार डाला।

तुलसी खल बानी मधुर सुनि समुझिअ हियँ हेरि।
राम राज बाधक भई मूढ़ मंथरा चेरि॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि दुष्टकी (कपटभरी) मीठी वाणी सुनकर अपने हृदयमें अच्छी तरह विचारकर उसका मतलब समझना चाहिये (सहसा उसपर विश्वास नहीं कर लेना चाहिये)। मूढ़ दासी मंथरा छलभरी मीठी वाणीसे ही [कैकेयीको निमित्त बनाकर] रामजीके राज्याभिषेकमें बाधक हुई थी॥ ३९९॥

जोंक सूधि मन कुटिल गति खल बिपरीत बिचारु।
अनहित सोनित सोष सो सो हित सोषनहारु॥

भावार्थ—जोंककी चाल टेढ़ी होती है, परंतु वह मनसे सीधी होती है; क्योंकि वह हानिकारक रक्तको ही चूसती है। परंतु दुष्टोंको इससे विपरीत समझना चाहिये (वे बाहरी चाल-ढालसे तो बड़े ही सीधे दीखते हैं, परंतु मनके अत्यन्त कपटी होते हैं)। क्योंकि वे तो दूसरोंके हितका ही शोषण (नाश) करनेवाले होते हैं॥ ४००॥

नीच गुड़ी ज्यों जानिबो सुनि लखि तुलसीदास।
ढीलि दिएँ गिरि परत महि खैंचत चढ़त अकास॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि नीच आदमियोंको अच्छी तरह जान-सुनकर गुड्डीके समान समझना चाहिये। जैसे गुड्डी ढील देनेसे पृथ्वीपर गिर पड़ती है और खींचनेसे आकाशमें चढ़ जाती है [इसी प्रकार दुरदुरा देनेसे नीच आदमी सीधे हो जाते हैं; पर अपनानेसे उलटे सिर चढ़ते हैं]॥ ४०१॥

भरदर बरसत कोस सत बचैं जे बूँद बराइ।
तुलसी तेउ खल बचन सर हए गए न पराइ॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जो सौ कोसतक बरसती हुई घनी वर्षामें भी जलकी बूँदोंसे बिना भीगें बच निकलते हैं, वे भी दुष्टोंके वचन-बाणोंसे मारे जाते हैं, भाग नहीं सकते। (घनी वर्षामें बिना भीगे निकला जा सकता है, परंतु दुष्टोंकी निन्दासे कोई नहीं बच सकता)॥ ४०२॥

पेरत कोल्हू मेलि तिल तिली सनेही जानि।
देखि प्रीति की रीति यह अब देखिबी रिसानि॥

भावार्थ—तेली तिलोंको स्नेही (इनमें तेल है यह) जानकर भी उन्हें कोल्हूमें डालकर पेरता है। यह तो प्रेम (स्नेह)-की रीति देखी, अब क्रोधकी रीति देखनी है (अर्थात् जब प्रेममें भी कोल्हूमें पेरता है, तब क्रोधमें तो जाने क्या करेगा?)॥ ४०३॥

सहबासी काचो गिलहिं पुरजन पाक प्रबीन।
कालछेप केहि मिलि करहिं तुलसी खग मृग मीन॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि बेचारे पक्षी, हिरन और मछली किसके साथ मिल-जुलकर अपना जीवन बितायें? एक स्थानमें रहनेवाले—एक ही आकाशमें उड़नेवाले बाज, एक ही वनमें रहनेवाले सिंह और एक ही जलमें रहनेवाली बड़ी मछलियाँ या ग्राह आदि तो इन्हें कच्चे ही निगल जाते हैं और पुरजन (गाँवों तथा नगरोंके

निवासी) पाकविद्यामें निपुण होनेके कारण इन्हें पकाकर खा जाते हैं (तात्पर्य यह कि दुर्बलोंके लिये कहीं ठौर नहीं है)॥ ४०४॥

जासु भरोसें सोइऐ राखि गोद में सीस।
तुलसी तासु कुचाल तें रखवारो जगदीस॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि विश्वास करके जिसकी गोदमें सिर रखकर सोया जाय, वही [विश्वासघात करके] कुचाल करे तो फिर उस कुचालसे भगवान् ही रक्षा कर सकते हैं॥ ४०५॥

मार खोज लै सौंह करि करि मत लाज न त्रास।
मुए नीच ते मीच बिनु जे इन कें बिस्वास॥

भावार्थ—जो शपथें खा-खाकर मित्र बन जाते हैं और फिर घरका भेद जानकर एकमत करके (आपसमें साजिश करके) मित्रको मार डालते हैं, जिन्हें अपने ऐसे कुकर्मोंसे न तो लज्जा आती है और न जिन्हें ईश्वर या धर्मका डर ही लगता है—ऐसे नीचोंका जो विश्वास करते हैं, वे नीच (मन्दबुद्धि) बिना मौत मारे जाते हैं॥ ४०६॥

परद्रोही परदार रत परधन पर अपबाद।
ते नर पावँर पापमय देह धरें मनुजाद॥

भावार्थ—जो मनुष्य दूसरोंसे वैर रखते हैं तथा जिनकी परायी स्त्रीमें, पराये धनमें और परनिन्दामें आसक्ति है, वे पामर पापमय मनुष्य नर-देह धारण किये हुए राक्षस ही हैं॥ ४०७॥

कपटीको पहचानना बड़ा कठिन है

बचन बेष क्यों जानिए मन मलीन नर नारि।
सूपनखा मृग पूतना दसमुख प्रमुख बिचारि॥

भावार्थ—किसी भी पुरुष या स्त्रीके बाहरी वेष और वचनसे कैसे पता लग सकता है कि इसका मन मलिन है? शूर्पणखा, मारीच, पूतना और रावण आदिके उदाहरणोंपर विचार करो (इनके हृदयमें कपट भरा था; परंतु ऊपरसे बड़े ही सुन्दर वेषधारी और मीठी वाणी बोलनेवाले

थे, इसलिये ये पहचाने नहीं जा सके। इस प्रकार संसारमें दम्भी लोगोंको उनके वेष-भूषा और बातचीतसे पहचानना कठिन है)॥ ४०८॥

कपटीसे सदा डरना चाहिये

हँसनि मिलनि बोलनि मधुर कटु करतब मन माँह।
छुवत जो सकुचइ सुमति सो तुलसी तिन्ह की छाँह॥

भावार्थ—जिसका हँसना, मिलना और बोलना बड़ा ही मधुर है, परंतु जिनके मनमें कड़ुए कारनामें (कपटभरे कर्म) भरे हुए हैं—तुलसीदासजी कहते हैं—उन नीचोंकी छायाको छूनेमें भी जो सकुचाता है, वही बुद्धिमान् है (अर्थात् मनके कपटी और ऊपरसे सज्जन बने हुए लोगोंसे सर्वथा अलग रहनेमें ही बुद्धिमानी है)॥ ४०९॥

कपट ही दुष्टताका स्वरूप है

कपट सार सूची सहस बाँधि बचन परबास।
कियो दुराउ चहौ चातुरीं सो सठ तुलसीदास॥

भावार्थ—जो कपटरूपी लोहेकी हजारों सूइयोंको वचनरूपी ऊपरके कपड़े (बेठन)-में चतुराईसे बाँधकर छिपाना चाहता है, तुलसीदासजी कहते हैं कि वह दुष्ट है॥ ४१०॥

कपटी कभी सुख नहीं पाता

बचन बिचार अचार तन मन करतब छल छूति।
तुलसी क्यों सुख पाइऐ अंतरजामिहि धूति॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जिसके वचनोंमें, विचारमें, आचरणमें, शरीरमें, मनमें और कर्मोंमें छूत लगी हुई है, (अर्थात् जो सब प्रकारसे कपटी है) वह इस प्रकार अन्तर्यामी परमात्माको ठगकर कैसे सुख पा सकता है?॥ ४११॥

सारदूल को स्वाँग करि कूकर की करतूति।
तुलसी तापर चाहिऐ कीरति बिजय बिभूति॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि लोग सिंहका-सा स्वाँग

रचकर कुत्तोंके-से काम करते हैं तथा इसपर भी कीर्ति, विजय और ऐश्वर्य चाहते हैं!॥ ४१२॥

पाप ही दुःखका मूल है

बड़े पाप बाढ़े किए छोटे किए लजात।
तुलसी ता पर सुख चहत बिधि सों बहुत रिसात॥

भावार्थ—बड़े-बड़े पाप तो बढ़-बढ़कर किये और छोटे पाप करनेमें लजाता है (सूईकी चोरीको पाप समझकर नहीं करता, परंतु दूसरेका धन व्यापारके नामपर हरनेमें जिसे आपत्ति नहीं है; अथवा जो नहाये बिना खानेमें तो पाप मानता है; परंतु दिन-रात कपट-छल, चोरी-हिंसा, वेश्यागमन आदिमें रचा-पचा रहता है)—तुलसीदासजी कहते हैं कि इसपर भी मनुष्य [अपनेको धर्मात्मा मानकर] सुख चाहता है और [न मिलनेपर] विधातापर क्रोध करता है॥ ४१३॥

अविवेक ही दुःखका मूल है

देस काल करता करम बचन बिचार बिहीन।
ते सुरतरु तर दारिदी सुरसरि तीर मलीन॥

भावार्थ—जिनको देश, काल, कर्ता, कर्म और वचनका विचार नहीं है, वे कल्पवृक्षके नीचे रहनेपर भी दरिद्री और देवनदी श्रीगंगाजीके तीरपर बसकर भी पापी बने रहते हैं (अर्थात् जो इस बातका विचार नहीं करते कि किस स्थानमें किस समय किसको कैसा कर्म करना चाहिये और कैसे वचन बोलने चाहिये, वे सदा दरिद्री और पापी ही बने रहते हैं)॥ ४१४॥

साहस हीं कै कोप बस किएँ कठिन परिपाक।
सठ संकट भाजन भए हठि कुजाति कपि काक॥

भावार्थ—दुःसाहस या क्रोधके वश होकर कर्म करनेसे उसका फल बहुत ही कठोर होता है। नीच और दुष्ट बालि और जयन्त इसी प्रकार हठपूर्वक कर्म करके संकटके पात्र हुए॥ ४१५॥

राज करत बिनु काजहीं करहिं कुचालि कुसाजि।
तुलसी ते दसकंध ज्यों जइहैं सहित समाज॥

भावार्थ—जो राजा राज्य करते हुए बिना ही कारण बुरी चाल चलते हैं तथा बुरे काम करने लगते हैं, तुलसीदासजी कहते हैं कि वे रावणकी तरह अपने समाजसहित नष्ट हो जायँगे॥ ४१६॥

राज करत बिनु काजहीं ठटहिं जे कूर कुठाट।
तुलसी ते कुरुराज ज्यों जइहैं बारह बाट*॥

भावार्थ—जो क्रूर राजा राज्य करते हुए बिना ही कारण बुरे काम करने लगते हैं, तुलसीदासजी कहते हैं कि वे दुर्योधनकी तरह बारह बाट (सब प्रकारसे नष्ट) हो जायँगे॥ ४१७॥

विपरीत बुद्धि विनाशका लक्षण है

सभा सुयोधन की सकुनि सुमति सराहन जोग।
द्रोन बिदुर भीषम हरिहि कहहिं प्रपंची लोग॥

भावार्थ—दुर्योधनकी सभामें [अत्यन्त नीच स्वभाववाला] शकुनि ही श्रेष्ठ, बुद्धिमान् और सराहनीय माना जाता था। गुरु द्रोणाचार्य, महात्मा विदुर, पितामह भीष्म और भगवान् श्रीकृष्णको तो (उस सभाके) लोग प्रपंची कहते थे॥ ४१८॥

पांडु सुअन की सदसि ते नीको रिपु हित जानि।
हरि हर सम सब मानिअत मोह ग्यान की बानि॥

भावार्थ—और पाण्डवोंकी सभामें सब लोग उन्हीं द्रोण और भीष्मको, यह भलीभाँति जानते हुए भी कि ये हमारे शत्रु कौरवोंके मित्र हैं, भगवान् विष्णु और शिवके समान मानते थे। अज्ञान और ज्ञानकी बानिका यही भेद है। (भगवान् श्रीकृष्ण प्रत्यक्ष ही पाण्डवोंके सहायक और पूज्य थे, महात्मा विदुरजी युद्धसे अलग थे ही। द्रोण और भीष्म कौरवोंकी ओरसे सेनानायक थे, तथापि यथार्थ ज्ञानके अभ्यासी पाण्डवोंकी सभामें सब लोग उन्हें यथार्थमें ही पूज्य समझते थे)॥ ४१९॥

---

* मोह, दीनता, भय, ह्रास, हानि, ग्लानि, क्षुधा, तृषा, क्षोभ, व्यथा, मृत्यु और अपकीर्ति—ये बारह बाट हैं।

हित पर बढ़इ बिरोध जब अनहित पर अनुराग।
राम बिमुख बिधि बाम गति सगुन अघाइ अभाग॥

भावार्थ—जब अपने हित करनेवालेके प्रति शत्रुता और हितका नाश करनेवालेपर प्रेम बढ़ जाता है, तब समझना चाहिये कि भगवान् श्रीरामजी उसके विमुख हैं, विधाताकी गति उसके प्रतिकूल है और यह उसके पूर्णरूपसे अभागी होनेका शकुन (चिह्न) है॥ ४२०॥

सहज सुहृद गुर स्वामि सिख जो न करइ सिर मानि।
सो पछिताइ अघाइ उर अवसि होइ हित हानि॥

भावार्थ—स्वभावसे ही हित करनेवाले मित्र, गुरु और स्वामीकी सीखको जो सिर चढ़ाकर उसके अनुसार कार्य नहीं करता, वह हृदयमें भरपेट पछताता है और उसके हितकी अवश्य ही हानि होती है॥ ४२१॥

जोशमें आकर अनधिकार कार्य करनेवाला पछताता है

भरुहाए नट भाँट के चपरि चढ़े संग्राम।
कै वै भाजे आइहैं कै बाँधे परिनाम॥

भावार्थ—भाटोंके भड़कानेमें जोशमें आकर यदि नट (नाचनेवाले) लोग सहसा लड़ाईमें चले जायँ तो उसका यही परिणाम होगा कि या तो वे रणसे भाग आवेंगे या कैद कर लिये जायँगे॥ ४२२॥

समयपर कष्ट सह लेना हितकर होता है

लोक रीति फूटी सहहिं आँजी सहइ न कोइ।
तुलसी जो आँजी सहइ सो आँधरो न होइ॥

भावार्थ—लोगोंकी यह रीति है कि वे आँखोंके फूटनेका कष्ट तो सह लेते हैं; परंतु अंजन (सुरमा) लगानेका कष्ट नहीं सहते। तुलसीदासजी कहते हैं—जो अंजन लगानेका कष्ट सह लेता है, वह अंधा नहीं होता॥ ४२३॥

भगवान् सबके रक्षक हैं

भागें भल ओड़ेहुँ भलो भलो न घालें घाउ।
तुलसी सब के सीस पर रखवारो रघुराउ॥

भावार्थ—यदि कोई तुमपर वार करे तो भाग जानेमें ही तुम्हारी भलाई है अथवा आत्मरक्षाके लिये डटकर उस वारको रोकना भी अच्छा है; परंतु बदलेमें उसपर चोट करना अच्छा नहीं है; क्योंकि रक्षा करनेवाले श्रीरघुनाथजी तो सबके सिरपर मौजूद ही हैं॥ ४२४॥

लड़ना सर्वथा त्याज्य है

सुमति बिचारहिं परिहरहिं दल सुमनहुँ संग्राम।
सकुल गए तनु बिनु भए साखी जादौ काम॥

भावार्थ—पत्तों और फूलोंके द्वारा भी लड़ाई करना बुरा है, यह विचारकर बुद्धिमान्लोग उसे बिलकुल त्याग देते हैं। इस बातके साक्षी यादव और कामदेव हैं। पत्तों (तिनकों)-के द्वारा परस्पर लड़कर यादवोंका सारा कुल नष्ट हो गया और पुष्प-बाणोंसे शिवजीपर प्रहार करनेवाला कामदेव शरीरहीन (अनंग) हो गया॥ ४२५॥

कलह न जानब छोट करि कलह कठिन परिनाम।
लगति अगिनि लघु नीच गृह जरत धनिक धन धाम॥

भावार्थ—कलहको छोटी बात नहीं जानना चाहिये; कलहका परिणाम बहुत भयंकर होता है। गरीबकी छोटी-सी झोंपड़ीमें आग लगती है, परंतु परिणाममें उससे बड़े-बड़े धनियोंके धन-धाम जल जाते हैं॥ ४२६॥

क्षमाका महत्त्व

छमा रोष के दोष गुन सुनि मनु मानहि सीख।
अबिचल श्रीपति हरि भए भूसुर लहै न भीख॥

भावार्थ—हे मन! क्षमा और क्रोधके गुण-दोषोंको सुनकर उनसे शिक्षा ग्रहण करो। [भृगुमुनि (ब्राह्मण)-की क्रोधसे मारी हुई लातको

छातीपर सहकर भगवान् विष्णुने उन्हें क्षमा कर दिया था। क्षमाके कारण] श्रीहरि तो अविचल लक्ष्मीजीके स्वामी हुए, परंतु [एक ब्राह्मणके क्रोधके परिणामस्वरूप] ब्राह्मणोंको भीख भी माँगे नहीं मिलती॥ ४२७॥

कौरव पांडव जानिऐ क्रोध छमा के सीम।
पाँचहि मारि न सौ सके सयौ सँघारे भीम॥

भावार्थ—कौरवोंको क्रोधकी और पाण्डवोंको क्षमाकी सीमा समझना चाहिये; परंतु क्रोधके कारण सौ कौरव पाँच पाण्डवोंको नहीं मार सके। इधर अकेले भीमने सौ-के-सौ कौरवोंका संहार कर दिया॥ ४२८॥

क्रोधकी अपेक्षा प्रेमके द्वारा वशमें करना ही जीत है

बोल न मोटे मारिऐ मोटी रोटी मारु।
जीति सहस सम हारिबो जीतें हारि निहारु॥

भावार्थ—किसीको मोटे बोल न मारो (हृदयको छेद डालनेवाले तीखे वचन न कहो), परंतु रोटीकी मोटी मार मारो (उसकी खूब पेट भरकर सेवा और सहायता करके उसे वशमें करो)। इस तरहकी अपनी हारको हजारों जीतके समान समझो और उस तरहके वाक्य-बाणोंके प्रहारसे—गाली-गलौजसे जीत जानेपर भी हार ही समझो॥ ४२९॥

जो परि पायँ मनाइए तासों रूठि बिचारि।
तुलसी तहाँ न जीतिऐ जहँ जीतेहूँ हारि॥

भावार्थ—जिन (माता-पिता, आचार्य आदि गुरुजनों)-को उनके पैरोंपर पड़कर मनाना कर्तव्य है, उनसे बहुत ही सोच-विचारकर रूठना चाहिये। तुलसीदासजी कहते हैं कि जहाँ जीतनेमें भी हार ही होती है, वहाँ जीतना नहीं चाहिये॥ ४३०॥

जूझे ते भल बूझिबो भली जीति तें हार।
डहकें तें डहकाइबो भलो जो करिअ बिचार॥

भावार्थ—यदि विचार किया जाय तो यही प्रतीत होता है कि

लड़नेकी अपेक्षा आपसमें समझौता कर लेना अच्छा है, जीतसे हार अच्छी है और किसीको ठगनेकी अपेक्षा ठगाना अच्छा है॥ ४३१॥

जा रिपु सों हारेहुँ हँसी जिते पाप परितापु।
तासों रारि निवारिऐ समयँ सँभारिअ आपु॥

भावार्थ—जिस शत्रुसे हारनेमें हँसी हो तथा जीतनेमें पाप और दु:ख हो, उससे मौका पड़नेपर स्वयं ही सँभलकर झगड़ा मिटा लेना चाहिये॥ ४३२॥

जो मधु मरै न मारिऐ माहुर देइ सो काउ।
जग जिति हारे परसुधर हारि जिते रघुराउ॥

भावार्थ—जो शहदसे ही मर जाय उसे जहर देकर कभी नहीं मारना चाहिये। परशुरामजी सारे जगत्को जीतकर भी श्रीरामचन्द्रजीकी मधुमयी वाणीसे हार गये और श्रीरघुनाथजी परशुरामजीके सामने अपनी हार मानकर भी जीत गये॥ ४३३॥

बैर मूल हर हित बचन प्रेम मूल उपकार।
दो हा सुभ संदोह सो तुलसी किएँ बिचार॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि हितके वचन वैरकी जड़को काटनेवाले हैं और हित करना तो प्रेमकी जड़ ही है। एवं विचार करनेपर जान पड़ता है कि हाहा खाना (विनती करना) यह तो शुभका समूह ही है॥ ४३४॥

रोष न रसना खोलिऐ बरु खोलिअ तरवारि।
सुनत मधुर परिनाम हित बोलिअ बचन बिचारि॥

भावार्थ—क्रोधमें आकर जबान नहीं खोलनी चाहिये, इससे तो तलवार खींचना बल्कि अच्छा है। [कहावत है, 'तलवारका घाव मिट जाता है, पर जबानका कभी नहीं मिटता।'] विचार-विचारकर ऐसे वचन बोलने चाहिये, जो सुननेमें मीठे हों और परिणाममें हितकारी हों॥ ४३५॥

मधुर बचन कटु बोलिबो बिनु श्रम भाग अभाग।
कुहू कुहू कलकंठ रव का का कररत काग॥

भावार्थ—मधुर बोलना और कड़वा बोलना बिना ही श्रमके भाग्य और अभाग्यको बुलाना (निमन्त्रण देना) है। कोयल 'कुहू', 'कुहू' की ध्वनि करती है। [तो सब उसका आदर करते हैं] और कौवा 'काँव', 'काँव' कर्राता है [तो लोग उसे पत्थर मारकर उड़ा देते हैं]॥ ४३६॥

पेट न फूलत बिनु कहें कहत न लागइ ढेर।
सुमति बिचारें बोलिए समुझि कुफेर सुफेर॥

भावार्थ—किसी बातके न कहनेसे तो पेट नहीं फूल जाता और कहनेसे सामने बातोंका ढेर नहीं लग जाता। अतएव समय-असमयको समझकर और पवित्र बुद्धिके द्वारा विचार करके ही यथायोग्य वचन बोलने चाहिये॥ ४३७॥

वीतराग पुरुषोंकी शरण ही जगत्‌के जंजालसे बचनेका उपाय है

छिद्यो न तरुनि कटाच्छ सर करेउ न कठिन सनेहु।
तुलसी तिन की देह को जगत कवच करि लेहु॥

भावार्थ—जिनका हृदय न तो युवतियोंके कटाक्ष-बाणोंसे घायल हुआ और न जिन्होंने विषयोंमें कठिन आसक्ति ही की—तुलसीदासजी कहते हैं—उनके शरीरको जगत्‌में अपनी रक्षाके लिये कवच बना लेना चाहिये (अर्थात् ऐसे महापुरुषोंके चरणोंमें रहनेवाले मनुष्य भी विषयोंपर विजय प्राप्त कर लेते हैं)॥ ४३८॥

शूरवीर करनी करते हैं, कहते नहीं

सूर समर करनी करहिं कहि न जनावहिं आपु।
बिद्यमान रन पाइ रिपु कायर कथहिं प्रतापु॥

भावार्थ—शूरवीर तो युद्धमें करनी (शूरवीरताका कार्य) करते हैं, कहकर अपनेको नहीं जनाते। शत्रुको युद्धमें उपस्थित पाकर कायर लोग ही अपने प्रतापकी डींग मारा करते हैं॥ ४३९॥

अभिमानके वचन कहना अच्छा नहीं

बचन कहे अभिमान के पारथ पेखत सेतु।
प्रभु तिय लूटत नीच भर जय न मीचु तेहिं हेतु॥

भावार्थ—एक समय [श्रीरामचन्द्रजीकृत रामेश्वरके पत्थरके] सेतुबन्धको देखकर अर्जुनने अभिमानके वचन कहे [कि श्रीरामजीने इतना प्रयास क्यों किया? मैं उस समय होता तो सारा पुल बाणोंसे ही बाँध देता। इस अभिमानका फल यह हुआ कि] भगवान् श्रीकृष्णके परिवारकी स्त्रियोंको [हस्तिनापुर ले जाते समय] नीच भरोंने [उनको] लूट लिया, अर्जुन उनको जीत नहीं सके और इस अपमानसे उनका मरण हो गया [अतएव अभिमानके वचन किसीसे नहीं कहने चाहिये] ॥ ४४० ॥

दीनोंकी रक्षा करनेवाला सदा विजयी होता है

राम लखन बिजई भए बनहुँ गरीब निवाज।
मुखर बालि रावन गए घरहीं सहित समाज॥

भावार्थ—गरीबोंपर कृपा करनेवाले श्रीराम-लक्ष्मण वनमें रहते हुए भी विजयी हुए, परंतु बकवादी बालि और रावण अपने घरमें ही सारे समाजसहित नष्ट हो गये॥ ४४१ ॥

नीतिका पालन करनेवालेके सभी सहायक बन जाते हैं

खग मृग मीत पुनीत किय बनहुँ राम नयपाल।
कुमति बालि दसकंठ घर सुहृद बंधु कियो काल॥

भावार्थ—नीतिके पालनेवाले श्रीरामचन्द्रजीने वनमें भी पक्षियों (जटायु आदि) और पशुओं (वानर-भालुओं)-को अपना पवित्र (सच्चा) मित्र बना लिया; परंतु बालि और रावणने घरमें ही अपने हितैषी भाइयोंको (सुग्रीव और विभीषणको) अपना काल बना लिया॥ ४४२ ॥

सराहनेयोग्य कौन है

लखइ अघानो भूख ज्यों लखइ जीतिमें हारि।
तुलसी सुमति सराहिऐ मग पग धरइ बिचारि॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जो भूखमें (अभावमें) भी

अपनेको तृप्तके समान समझता है और जीतमें भी अपनी हार मानता है—इस प्रकार जो खूब विचार-विचारकर मार्गपर पैर रखता है, वह बुद्धिमान् ही सराहनेयोग्य है। (अभावका अनुभव करनेसे ही कामना होती है और कामना ही पापकी जड़ है; अतएव जो सदा अपनेको तृप्त, पूर्णकाम मानता है, उसके द्वारा पाप नहीं होते। इसी प्रकार अपनी विजय माननेसे अभिमान बढ़ता है, जो पतनका हेतु होता है। अतएव जो पुरुष प्रत्येक क्रियामें और फलमें अभिमानका त्यागकर विचारपूर्वक दोषोंसे बचता रहता है, वही बुद्धिमान् है और वही प्रशंसनीय है) ॥ ४४३ ॥

अवसर चूक जानेसे बड़ी हानि होती है

लाभ समय को पालिबो हानि समय की चूक।
सदा बिचारहिं चारुमति सुदिन कुदिन दिन दूक॥

भावार्थ—अनुकूल समय आनेपर काम बना लेना ही लाभ है और समयपर चूक जाना ही हानि है। इसीलिये सुन्दर बुद्धिवाले लोग इस बातका सदा विचार किया करते हैं, क्योंकि अच्छा और बुरा समय दो ही दिनका होता है। [अतएव समयपर चूक जाना बुद्धिमानी नहीं है तात्पर्य यह है कि मनुष्य-जीवनका यह अवसर भगवद्भजनके लिये ही मिला है। इस समय जो चूक जायगा—भगवान्‌को नहीं भजेगा, उसे मनुष्य-जीवनके परम लाभसे वंचित होकर बड़ी हानि सहनी पड़ेगी] ॥ ४४४ ॥

समयका महत्त्व

सिंधु तरन कपि गिरि हरन काज साइँ हित दोउ।
तुलसी समयहिं सब बड़ो बूझत कहुँ कोउ कोउ॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं—समयपर काम करनेसे ही सब बड़े होते हैं, इस रहस्यको कहीं कोई-कोई ही जानते हैं। श्रीहनुमान्‌जी [सीताका संदेश लानेके लिये] समुद्रको लाँघना और [श्रीलक्ष्मणजीकी मूर्च्छा दूर करनेके लिये] द्रोण-पर्वतको लाना—ये दोनों काम अपने स्वामीके हितके लिये ठीक समयपर ही किये थे। (समुद्र लाँघना और पहाड़ उठाना हनुमान्‌जीके लिये साधारण बात थी, परंतु ठीक समयपर होनेसे ही इनकी इतनी महिमा हुई) ॥ ४४५ ॥

होनहारकी प्रबलता

तुलसी जसि भवतब्यता तैसी मिलइ सहाइ।
आपुनु आवइ ताहि पै ताहि तहाँ लै जाइ॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जैसी होनहार होती है, वैसी ही सहायता मिल जाती है। या तो वह स्वयं उसके पास आती है या उसे वहाँ ले जाती है॥ ४५०॥

परमार्थप्राप्तिके चार उपाय

कै जूझिबो कै बूझिबो दान कि काय कलेस।
चारि चारु परलोक पथ जथा जोग उपदेस॥

भावार्थ—परलोकके लिये सुन्दर चार मार्ग हैं और [अधिकार-भेदसे] इनका यथायोग्य उपदेश किया गया है—[वेदाध्ययनादिके द्वारा] ज्ञान-अर्जन करना (ब्राह्मणके लिये), [सम्मुख समरमें] युद्ध करना (क्षत्रियके लिये), [व्यापारमें धन कमाकर] दान देना (वैश्यके लिये) और शरीरसे कष्ट सहकर सेवा करना (शूद्रके लिये)॥ ४५१॥

विवेककी आवश्यकता

पात पात को सींचिबो न करु सरग तरु हेत।
कुटिल कटुक फर फरैगो तुलसी करत अचेत॥

भावार्थ—कल्पवृक्ष [-से फल] पानेके लिये, पत्ते-पत्तेको (हर किसी पेड़को) मत सींचा करो, ऐसा करोगे तो ऐसा टेढ़ा और कड़ुआ फल फलेगा जो तुमको अचेत कर देगा (अर्थात् परम सुखरूप मनोरथकी पूर्तिके लिये बिना समझे-सोचे जैसे-तैसे कर्म मत किया करो; ऐसा करनेसे सुख तो मिलेगा ही नहीं, उलटे बुरे कर्मोंके फलस्वरूप महान् दुःखोंकी प्राप्ति होगी, जिससे रहा-सहा विवेक भी नष्ट हो जायगा)॥ ४५२॥

विश्वासकी महिमा

गठिबँध ते परतीति बड़ि जेहिं सबको सब काज।
कहब थोर समुझब बहुत गाड़े बढ़त अनाज॥

भावार्थ—गठबन्धनसे भी विश्वास बड़ा है, जिससे सब लोगोंके

सब काम होते हैं। कहनेमें सब बात छोटी-सी है, परंतु समझनेमें बहुत बड़ी है। जिस प्रकार अनाजके थोड़े-से दाने मिट्टीमें गाड़ दिये जाते हैं, परंतु वही अनाज पैदा होनेपर बहुत बढ़ जाता है॥ ४५३॥

अपनो ऐपन निज हथा तिय पूजहिं निज भीति।
फरइ सकल मन कामना तुलसी प्रीति प्रतीति॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि स्त्रियाँ अपने घरकी दीवारपर अपने ऐपनके (चावल और हल्दीको एक साथ पीसकर बनाये हुए रंगके) अपने ही हाथे छापकर उनको पूजती हैं और उसीसे उनकी सारी मनःकामनाएँ पूरी हो जाती हैं। यह प्रेम और विश्वासका ही फल है॥ ४५४॥

बरषत करषत आपु जल हरषत अरघनि भानु।
तुलसी चाहत साधु सुर सब सनेह सनमानु॥

भावार्थ—सूर्य स्वयं [पृथ्वीपर अपार] जल बरसाता है और सोखता है; परंतु लोगोंके दिये हुए अर्घ्य (थोड़े-से-जल)-से बड़ा प्रसन्न होता है। तुलसीदासजी कहते हैं कि साधु और देवता सब स्नेह और सम्मान ही चाहते हैं॥ ४५५॥

बारह नक्षत्र व्यापारके लिये अच्छे हैं

श्रुति गुन कर गुन पु जुग मृग हय रेवती सखाउ।
देहि लेहि धन धरनि धरु गएहुँ न जाइहि काउ॥

भावार्थ—श्रवण नक्षत्रसे तीन नक्षत्र (श्रवण, धनिष्ठा, शतभिष), हस्त नक्षत्रसे तीन नक्षत्र (हस्त, चित्रा, स्वाती), 'पु' से आरम्भ होनेवाले दो नक्षत्र (पुष्य, पुनर्वसु) और मृगशिरा, अश्विनी, रेवती तथा अनुराधा—इन बारह नक्षत्रोंमें धन, जमीन और धरोहरका लेन-देन करो; ऐसा करनेसे धन जाता हुआ प्रतीत होनेपर भी नहीं जायगा॥ ४५६॥

चौदह नक्षत्रोंमें हाथसे गया हुआ धन वापस नहीं मिलता

ऊगुन पूगुन बि अज कृ म आ भ अ मू गुनु साथ।
हरो धरो गाड़ो दियो धन फिरि चढ़इ न हाथ॥

भावार्थ—'उ' से आरम्भ होनेवाले तीन नक्षत्र (उत्तराफाल्गुनी,

उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद), 'पू' से आरम्भ होनेवाले तीन नक्षत्र (पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद), वि (विशाखा), अज (रोहिणी), कृ (कृत्तिका), म (मघा), आ (आर्द्रा), भ (भरणी), अ (अश्लेषा) और मू (मूल)-को भी इन्हींके साथ समझ लो—इन चौदह नक्षत्रोंमें हरा हुआ (चोरी गया हुआ), धरोहर रखा हुआ, गाड़ा हुआ तथा उधार दिया हुआ धन फिर लौटकर हाथ नहीं आता॥ ४५७॥

कौन-सी तिथियाँ कब हानिकारक होती हैं?

रबि हर दिसि गुन रस नयन मुनि[१] प्रथमादिक बार।
तिथि सब काज नसावनी होइ कुजोग बिचार॥

भावार्थ—द्वादशी, एकादशी, दशमी, तृतीया, षष्ठी, द्वितीया, सप्तमी—ये सातों तिथियाँ यदि क्रमसे रवि, सोम, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनिवारको पड़ें तो ये सब कामोंको बिगाड़नेवाली होती हैं और यह कुयोग समझा जाता है॥ ४५८॥

कौन-सा चन्द्रमा घातक समझना चाहिये?

ससि सर नव दुइ छ दस गुन मुनि फल बसु हर भानु[२]।
मेषादिक क्रम तें गनहि घात चंद्र जियँ जानु॥

भावार्थ—मेषके प्रथम, वृषके पाँचवें, मिथुनके नवें, कर्कके दूसरे, सिंहके छठे, कन्याके दसवें, तुलाके तीसरे, वृश्चिकके सातवें, धनके चौथे, मकरके आठवें, कुम्भके ग्यारहवें और मीन राशिके बारहवें चन्द्रमा पड़ जायँ तो उसे घातक समझो॥ ४५९॥

किन-किन वस्तुओंका दर्शन शुभ है?

नकुल सुदरसन दरसनी छेमकरी चक चाष।
दस दिसि देखत सगुन सुभ पूजहिं मन अभिलाष॥

भावार्थ—नेवला, मछली, दर्पण, क्षेमकरी चिड़िया (सफेद

१-रवि बारह, हर (रुद्र) ग्यारह, दिशाएँ दस, गुण तीन, रस छः, नेत्र दो और ऋषि-मुनि सात हैं। इन्हींसे तिथियोंका वर्णन है।

२-शशि—चन्द्रमा एक, सर—बाण पाँच, फल चार, वसु आठ होते हैं।

मुँहवाली चील्ह), चकवा तथा नीलकंठ—इन्हें दसों दिशाओंमेंसे किसी ओर भी देखना शुभ शकुन है और इससे मनकी अभिलाषाएँ पूर्ण होती हैं॥ ४६०॥

सात वस्तुएँ सदा मंगलकारी हैं

सुधा साधु सुरतरु सुमन सुफल सुहावनि बात।
तुलसी सीतापति भगति सगुन सुमंगल सात॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि अमृत, साधु, कल्पवृक्ष, पुष्प, सुन्दर फल, सुहावनी बात और श्रीजानकीनाथजीकी भक्ति—ये सात सुन्दर मंगलकारी शकुन हैं॥ ४६१॥

श्रीरघुनाथजीका स्मरण सारे मंगलोंकी जड़ है

भरत सत्रुसूदन लखन सहित सुमिरि रघुनाथ।
करहु काज सुभ साज सब मिलिहि सुमंगल साथ॥

भावार्थ—भरत, शत्रुघ्न और लक्ष्मणसहित श्रीरघुनाथजीका स्मरण करके सब शुभ साधनोंके द्वारा कार्य करो तो साथ-ही-साथ सुन्दर मंगल भी मिलता जायगा (अर्थात् मनोरथ सफल होते जायँगे)॥ ४६२॥

यात्राके समयका शुभ स्मरण

राम लखन कौसिक सहित सुमिरहु करहु पयान।
लच्छि लाभ लै जगत जसु मंगल सगुन प्रमान॥

भावार्थ—श्रीविश्वामित्रजीसहित श्रीराम-लक्ष्मणका स्मरण करके यात्रा करो और लक्ष्मीका लाभ लेकर जगत्‌में यश लो। यह शकुन सच्चा मंगलमय है॥ ४६३॥

वेदकी अपार महिमा

अतुलित महिमा बेद की तुलसी किएँ बिचार।
जो निंदत निंदित भयो बिदित बुद्ध अवतार॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि विचार करनेपर यहाँ सिद्ध होता है कि वेदकी महिमा अतुलनीय है, जिसकी निन्दा करनेसे स्वयं भगवान्‌का बुद्धावतार भी निन्दित हो गया, यह सबको विदित है॥ ४६४॥

तुलसी मीठी अमी तें मागी मिलै जो मीच।
सुधा सुधाकर समय बिनु कालकूट तें नीच॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि यदि समयपर (जिस समय मनुष्य दुःखसे संतप्त होकर घबड़ा उठता है) माँगनेसे मौत भी मिल जाय तो वह अमृतसे अधिक मीठी मालूम होती है। परंतु बिना अवसरके अमृत या चन्द्रमा भी मिलें तो वे कालकूट जहरसे भी अधिक बुरे लगते हैं॥ ४४६ ॥

विपत्तिकालके मित्र कौन हैं?

तुलसी असमय के सखा धीरज धरम बिबेक।
साहित साहस सत्यब्रत राम भरोसो एक॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि धीरज, धर्म, विवेक, सत्साहित्य, साहस और सत्यका व्रत अथवा एकमात्र श्रीरामका भरोसा—बुरे समयके (विपत्तिकालके) यही मित्र हैं॥ ४४७ ॥

समरथ कोउ न राम सों तीय हरन अपराधु।
समयहिं साधे काज सब समय सराहहिं साधु॥

भावार्थ—भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके समान तो कोई सामर्थ्यवान् नहीं (जो होनी-अनहोनी सब कुछ कर सकते हैं) और सीताहरणके समान भयंकर अपराध कोई क्या करेगा? इसपर भी श्रीरामजीने उस समय रावणको न मारकर उचित समयपर ही सब काम किये। इसीलिये साधुलोग समयकी सराहना करते हैं॥ ४४८ ॥

तुलसी तीरहु के चलें समय पाइबी थाह।
धाइ न जाइ थहाइबी सर सरिता अवगाह॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि नदी या सरोवरके किनारे-किनारे चलनेसे ही समयपर उनकी थाह मिल जायगी; अगाध तालाब या नदियोंकी थाह लेनेके लिये दौड़कर उनके अंदर घुस नहीं जाना चाहिये (समयकी प्रतीक्षा करनी चाहिये)॥ ४४९ ॥

बुध किसान सर बेद निज मतें खेत सब सींच।
तुलसी कृषि लखि जानिबो उत्तम मध्यम नीच॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि पण्डितगण किसान हैं और वेद सरोवर है, इसीसे जल ले-लेकर सब अपने-अपने मतरूपी खेतको सींचते हैं, इनमें कौन-सा खेत [मत] उत्तम है और कौन-सा मध्यम या नीच है इसका पता खेती [उत्तम, मध्यम और नीच फल और विस्तार] देखकर लगाना चाहिये॥ ४६५॥

धर्मका परित्याग किसी भी हालतमें नहीं करना चाहिये

सहि कुबोल साँसति सकल अँगइ अनट अपमान।
तुलसी धरम न परिहरिअ कहि करि गए सुजान॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि बुरे वचनोंको और सब प्रकारके कष्टोंको सह लो तथा मिथ्या अपमानको भी अंगीकार कर लो, परंतु धर्मको मत छोड़ो। श्रेष्ठ बुद्धिमान् पुरुष ऐसा ही उपदेश और आचरण कर गये हैं॥ ४६६॥

दूसरेका हित ही करना चाहिये, अहित नहीं

अनहित भय परहित किएँ पर अनहित हित हानि।
तुलसी चारु बिचारु भल करिअ काज सुनि जानि॥

भावार्थ—दूसरेका हित करनेमें तो अपने अहितका केवल भय ही रहता है; परंतु दूसरेका अहित करनेमें अपने हितका नाश होता ही है। इसलिये तुलसीदासजी कहते हैं कि यहाँ यही विचार सुन्दर और मंगलकारक है कि जान-सुनकर (सोच-समझकर) काम करना चाहिये (पराये हितका ही काम करना चाहिये, अहितका नहीं)॥ ४६७॥

प्रत्येक कार्यकी सिद्धिमें तीन सहायक होते हैं

पुरुषारथ पूरब करम परमेस्वर परधान।
तुलसी पैरत सरित ज्यों सबहिं काज अनुमान॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि पुरुषार्थ, पूर्वकर्म (प्रारब्ध) और प्रधानतया परमात्माकी कृपा—इन्हीं तीनोंके अवलम्बनसे जैसे

नदीको तैरकर पार किया जाता है, वैसे ही सभी कामोंमें अनुमान कर लेना चाहिये ॥ ४६८ ॥

नीतिका अवलम्बन और श्रीरामजीके चरणोंमें प्रेम ही श्रेष्ठ है

चलब नीति मग राम पग नेह निबाहब नीक।
तुलसी पहिरिअ सो बसन जो न पखारें फीक॥

भावार्थ—नीतिपर चलना और श्रीरामजीके चरणोंमें प्रेमका निबाहना (अटूट प्रेम करना) ही उत्तम है। तुलसीदासजी कहते हैं कि वस्त्र वही पहनना चाहिये, जिसका रंग धोनेपर भी फीका न पड़े॥ ४६९ ॥

दोहा चारु बिचारु चलु परिहरि बाद बिबाद।
सुकृत सीवँ स्वारथ अवधि परमारथ मरजाद॥

भावार्थ—उपर्युक्त दोहेको अच्छी तरह विचार लो (अर्थात् नीतिका अवलम्बन और श्रीरामजीके चरणोंका प्रेम कभी न छोड़ो) [अथवा वाद-विवाद छोड़कर दो 'हा' अर्थात् हाहा खाना—सबसे विनीत रहना ही सुन्दर विचार है] और वाद-विवाद छोड़कर चलो, [चाहे कोई कुछ भी कहे]। बस, यही पुण्यकी सीमा है, यही स्वार्थकी अवधि है और यही परमार्थकी—भगवत्प्राप्तिकी मर्यादा है॥ ४७० ॥

विवेकपूर्वक व्यवहार ही उत्तम है

तुलसी सो समरथ सुमति सुकृती साधु सयान।
जो बिचारि ब्यवहरइ जग खरच लाभ अनुमान॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि वही पुरुष सामर्थ्यवान्, बुद्धिमान्, पुण्यात्मा, साधु और चतुर है जो आयके अनुमानसे ही व्यय करता है और जगत्‌में विचारपूर्वक व्यवहार करता है॥ ४७१ ॥

जाय जोग जग छेम बिनु तुलसी के हित राखि।
बिनुऽपराध भृगुपति नहुष बेनु बृकासुर साखि॥

भावार्थ—जगत्‌में योगकी (अर्थात् प्राप्त हुए धन, ऐश्वर्य, शक्ति या अधिकारकी) रक्षा किये बिना अर्थात् उसका सदुपयोग न

107 Dohavali_Section_5_1_Back

करके दुरुपयोग करनेसे वह नष्ट हो जाता है। [जिनके प्रति दुरुपयोग होता है उनका तो कुछ नहीं बिगड़ता, क्योंकि] तुलसीदासके हितैषी श्रीरामजी निरपराधोंकी रक्षा करते ही हैं। इसमें परशुराम, नहुष, वेन और वृकासुर (भस्मासुर) साक्षी हैं। (परशुरामजीने अपने बलका क्षत्रियोंके नाशमें दुरुपयोग किया; परंतु अन्तमें क्षत्रियवंश बच गया और परशुरामजीका बल क्षत्रियशरीरधारी भगवान् श्रीरामजीद्वारा हरा गया। राजा नहुषको पुण्यबलसे जब इन्द्रका सिंहासन प्राप्त हुआ, तब इन्द्रपत्नी शचीके साथ सम्भोगकी इच्छा करके नहुषने अधिकारका दुरुपयोग किया, जिसके फलस्वरूप सप्तर्षियोंके शापसे उनको स्वर्गसे नीचे गिरना पड़ा और निरपराध शचीके सतीत्वकी रक्षा हो गयी। वेनने अपने अधिकारका दुरुपयोग करके धर्मका नाश करना आरम्भ किया; परंतु धर्म तो नष्ट नहीं हुआ; ऋषियोंके शापसे स्वयं वेनको ही मरना पड़ा। वृकासुर (भस्मासुर) शिवजीसे वरदान पाकर ऐसा बौराया कि उसने अपने वरदाता शिवजीको ही जला देना चाहा। अन्तमें भगवान् विष्णुकी चतुराईसे वह स्वयं जल गया।) ॥ ४७२ ॥

नेमसे प्रेम बड़ा है

बड़ि प्रतीति गठिबंध तें बड़ो जोग तें छेम।
बड़ो सुसेवक साइँ तें बड़ो नेम तें प्रेम॥

भावार्थ—बाहरी ग्रन्थि-बन्धनकी अपेक्षा विश्वास बड़ा है। योगसे क्षेम बड़ा है। स्वामीकी अपेक्षा श्रेष्ठ सेवक बड़ा है और नियमोंसे प्रेम बड़ा है॥ ४७३ ॥

किस-किसका परित्याग कर देना चाहिये

सिष्य सखा सेवक सचिव सुतिय सिखावन साँच।
सुनि समुझिअ पुनि परिहरिअ पर मन रंजन पाँच॥

भावार्थ—यदि सब बात सुननेमें आवे कि अपना शिष्य, मित्र, नौकर, मन्त्री और सुन्दरी स्त्री—ये पाँचों मुझको छोड़कर दूसरेके मनको प्रसन्न करने लगे हैं तो पहले तो इसकी जाँच करनी चाहिये

और [जाँच करनेपर यदि बात सत्य निकले तो] फिर इन्हें छोड़ देना चाहिये ॥ ४७४ ॥

सात वस्तुओंको रस बिगड़नेसे पहले ही छोड़ देना चाहिये

नगर नारि भोजन सचिव सेवक सखा अगार।
सरस परिहरें रंग रस निरस बिषाद बिकार॥

भावार्थ—नगर, स्त्री, भोजन, मन्त्री, सेवक, मित्र और घर—इनकी सरसता नष्ट होनेसे पहले ही इन्हें छोड़ देनेमें शोभा और आनन्द है। नीरस होनेपर इनका त्याग करनेमें तो शोक और अशान्ति ही होती है ॥ ४७५ ॥

मनके चार कण्टक हैं

तूठहिं निज रुचि काज करि रूठहिं काज बिगारि।
तीय तनय सेवक सखा मन के कंटक चारि॥

भावार्थ—स्त्री, पुत्र, सेवक और मित्र जब अपनी रुचिके अनुसार कार्य करनेमें संतुष्ट होते हैं (अपनी रुचिके प्रतिकूल किसीकी बात नहीं सुनते) और मनमानी करके आप ही काम बिगाड़ लेते हैं तथा फिर रूठ भी जाते हैं, तब ये चारों मनको काँटेके समान चुभने लगते हैं ॥ ४७६ ॥

कौन निरादर पाते हैं?

दीरघ रोगी दारिदी कटुबच लोलुप लोग।
तुलसी प्रान समान तउ होहिं निरादर जोग॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि प्राणके समान प्यारे होनेपर भी बहुत दिनोंके रोगी, दरिद्र, कटु वचन बोलनेवाले और लालची—ये चारों निरादरके योग्य ही हो जाते हैं ॥ ४७७ ॥

पाँच दुःखदायी होते हैं

पाही खेती लगन बट रिन कुब्याज मग खेत।
बैर बड़े सों आपने किए पाँच दुख हेत॥

भावार्थ—पाही खेती (जिस गाँवमें रहते हों उससे दूर जाकर दूसरे

गाँवमें खेती करना), राह चलते मनुष्यमें आसक्ति, बुरे (बहुत अधिक) ब्याजकी कर्जदारी, रास्तेपरका खेत और अपनी अपेक्षा बड़ेसे वैर—ये पाँचों काम करनेसे (अवश्य ही) दुःखके कारण होते हैं॥ ४७८॥

समर्थ पापीसे वैर करना उचित नहीं

धाइ लगै लोहा ललकि खैंचि लेइ नइ नीचु।
समरथ पापी सों बयर जानि बिसाही मीचु॥

भावार्थ—जिस तरह लोहा चावसे दौड़कर चुम्बकके लग जाता है, उसी तरह नीच मनुष्य [कपटभरी] नम्रता प्रदर्शित कर खींच लेता है। इसी प्रकार समर्थ पापीसे वैर करनेको खरीदी हुई मौत समझो॥ ४७९॥

शोचनीय कौन है

सोचिअ गृही जो मोह बस करइ करम पथ त्याग।
सोचिअ जती प्रपंच रत बिगत बिबेक बिराग॥

भावार्थ—वह गृहस्थ शोचनीय है, जो मोहवश शास्त्रोक्त कर्ममार्गका त्याग कर देता है और वह संन्यासी शोचनीय है, जो संसारमें आसक्त और ज्ञान-वैराग्यसे हीन है॥ ४८०॥

परमार्थसे विमुख ही अंधा है

तुलसी स्वारथ सामुहो परमारथ तन पीठि।
अंध कहें दुख पाइहै डिठिआरो केहि डीठि॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जो मनुष्य स्वार्थके तो (सम्मुख) शरण हो रहा है और परमार्थकी ओर जिसने पीठ कर रखी है (अर्थात् भगवान्‌से विमुख होकर जो केवल विषयोंमें रत है), वह अन्धा कहनेपर तो मनमें दुःख पायेगा, परंतु किस आँखको लेकर उसे आँखवाला कहा जाय? (अर्थात् आँख हुए बिना उसे आँखवाला कहें भी कैसे? हृदयमें विवेकरूपी असली आँख होती तो वह भगवान्‌के सम्मुख होनेमें ही अपना कल्याण देखता और भयंकर विषयोंका मोह छोड़ देता)॥ ४८१॥

मनुष्य आँख होते हुए भी मृत्युको नहीं देखते

बिन आँखिन की पानहीं पहिचानत लखि पाय।
चारि नयन के नारि नर सूझत मीचु न माय॥

भावार्थ—बिना आँखवाली जूती पैरको देखकर पहचान लेती है; किंतु इन नर-नारियोंके चार-चार आँखें (दो बाहरकी और मन-बुद्धिरूप दो भीतरकी) होनेपर भी इन्हें मौत और माया नहीं सूझती॥ ४८२॥

मूढ़ उपदेश नहीं सुनते

जौ पै मूढ़ उपदेस के होते जोग जहान।
क्यों न सुजोधन बोध कै आए स्याम सुजान॥

भावार्थ—यदि मूर्ख मनुष्य संसारमें उपदेशके योग्य होते तो परम चतुर भगवान् श्रीकृष्ण दुर्योधनको क्यों न समझा सके?॥ ४८३॥

सोरठा

फूलइ फरइ न बेत जदपि सुधा बरषहिं जलद।
मूरुख हृदयँ न चेत जौं गुर मिलहिं बिरंचि सम॥

भावार्थ—यद्यपि बादल अमृत-सा जल बरसाते हैं तो भी बेंत फूलता-फलता नहीं। इसी प्रकार यदि ब्रह्माके समान भी [ज्ञानी] गुरु मिल जायँ तो भी मूर्खके हृदयमें ज्ञान नहीं होता॥ ४८४॥

दोहा

रीझि आपनी बूझि पर खीझि बिचार बिहीन।
ते उपदेस न मानहीं मोह महोदधि मीन॥

भावार्थ—अपनी ही समझ (बुद्धि)-पर जिनकी प्रीति है (अपनी ही समझको सबसे उत्तम मानते हैं) और जिनका रोष नासमझीको लिये हुए होता है; वे मोहके महान् समुद्रमें मछली बने हुए लोग किसीका उपदेश नहीं मानते॥ ४८५॥

बार-बार सोचनेकी आवश्यकता

अनसमुझें अनुसोचनो अवसि समुझिऐ आपु।
तुलसी आपु न समुझिऐ पल पल पर परितापु॥

भावार्थ—किसी बातको न समझनेपर उसे बार-बार सोचना चाहिये, ऐसा करनेसे वह बात अपने-आप समझमें आ जायगी। तुलसीदासजी कहते हैं कि वह स्वयं समझमें नहीं आयी तो [उसके अनुसार आचरण करनेसे] क्षण-क्षणमें दुःख होगा॥ ४८६॥

मूर्खशिरोमणि कौन हैं?

कूप खनत मंदिर जरत आएँ धारि बबूर।
बवहिं नवहिं निज काज सिर कुमति सिरोमनि कूर॥

भावार्थ—जो लोग घर जलनेपर कुँआ खोदते हैं, शत्रुके चढ़ आनेपर [किलेकी रक्षाके लिये चारों ओर] बबूलके वृक्ष रोपना शुरू करते हैं और स्वार्थसाधनके लिये [भगवान्‌को छोड़कर जहाँ-तहाँ] सिर नवाते फिरते हैं, वे मूर्खोंके शिरोमणि और निकम्मे (दीर्घसूत्री और प्रमादी) हैं॥ ४८७॥

ईश्वरविमुखकी दुर्गति ही होती है

निडर ईस तें बीस कै बीस बाहु सो होइ।
गयो गयो कहैं सुमति सब भयो कुमति कह कोइ॥

भावार्थ—ईश्वरका डर छोड़कर चाहे कोई बीसों बिस्वे (निश्चय ही) रावणके समान [प्रभावशाली] क्यों न हो जाय, बुद्धिमान्‌लोग तो उस ईश्वरविमुखको गया-गया ही (नष्ट ही हुआ) कहेंगे; कोई कुबुद्धिवाला ही उसे उन्नतिको प्राप्त हुआ बतलावेगा॥ ४८८॥

जान-बूझकर अनीति करनेवालेको उपदेश देना व्यर्थ है

जो सुनि समुझि अनीति रत जागत रहै जु सोइ।
उपदेसिबो जगाइबो तुलसी उचित न होइ॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जो [सब बात] सुन-समझकर भी (जान-बूझकर) अनीतिमें लगा रहता है और जागते हुए

भी सो रहता है, उसको उपदेश देना या जगाना उचित नहीं है अर्थात् व्यर्थ है॥ ४८९॥

बहु सुत बहु रुचि बहु बचन बहु अचार ब्यवहार।
इनको भलो मनाइबो यह अग्यान अपार॥

भावार्थ—जिनके बहुत पुत्र हों, जिनकी [भाँति-भाँतिकी] अनेकों इच्छाएँ हों, जो तरह-तरहकी बातें बनाते हों, जिनके आचरण और व्यवहार अनेकों प्रकारके हों, उनकी भलाई चाहना महान् मूर्खता है (अर्थात् उनका कल्याण होना बहुत ही कठिन है)॥ ४९०॥

जगत्‌के लोगोंको रिझानेवाला मूर्ख है

लोगनि भलो मनाव जो भलो होन की आस।
करत गगन को गेंडुआ सो सठ तुलसीदास॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जो आदमी [दूसरेके द्वारा] अपना भला होनेकी आशासे [भगवान्‌को छोड़कर जगत्‌के] लोगोंको रिझाता रहता है, वह मूर्ख आकाशका तकिया बनाना चाहता है॥ ४९१॥

अपजस जोग कि जानकी मनि चोरी की कान्ह।
तुलसी लोग रिझाइबो करषि कातिबो नान्ह॥

भावार्थ—क्या श्रीजानकीजी अपयशके योग्य थीं और क्या श्रीकृष्णने मणिकी चोरी की थी? कदापि नहीं! अतएव तुलसीदासजी कहते हैं कि सब लोगोंको प्रसन्न करना उतना ही कठिन है, जितना जोरसे खींचकर बारीक सूत कातना!॥ ४९२॥

तुलसी जु पै गुमान को होतो कछू उपाउ।
तौ कि जानकिहि जानि जियँ परिहरते रघुराउ॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि यदि लोगोंके संदेहको दूर करनेका कोई उपाय होता तो क्या श्रीरघुनाथजी श्रीजानकीजीको अपने मनमें [सर्वथा निष्कलंक] जानते हुए भी उनका त्याग करते?॥ ४९३॥

प्रतिष्ठा दुःखका मूल है

मागि मधुकरी खात ते सोवत गोड़ पसारि।
पाप प्रतिष्ठा बढ़ि परी ताते बाढ़ी रारि॥

भावार्थ—जबतक मधुकरी माँगकर खाते थे, तबतक पैर पसारकर (निश्चिन्त रूपसे) सोते थे। परंतु इधर यह पापमयी प्रतिष्ठा बढ़ गयी, इसीसे झगड़ा (झंझट) भी बढ़ गया॥ ४९४॥

तुलसी भेड़ी की धँसनि जड़ जनता सनमान।
उपजत ही अभिमान भो खोवत मूढ़ अपान॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि मूर्ख जनताका सम्मान भेड़ियाधँसानके समान है (जहाँ एकने बड़ाई की, वहीं सब करने लगते हैं), परंतु इस सम्मानका मिलना शुरू होते ही अभिमान उत्पन्न हो जाता है, जिससे मूर्खलोग अपनी स्थिति खो बैठते हैं (अभिमानके वश होकर गिर जाते हैं)॥ ४९५॥

भेड़ियाधँसानका उदाहरण

लही आँखि कब आँधरे बाँझ पूत कब ल्याइ।
कब कोढ़ी काया लही जग बहराइच जाइ॥

भावार्थ—दुनिया बहराइचको दौड़ी जाती है, परंतु कोई इस बातका पता नहीं लगाता कि वहाँ जाकर कब किस अंधेने आँख पायी, कौन बाँझ कब लड़का लेकर आयी और कब किस कोढ़ीने कंचन-सी काया प्राप्त की?

नोट—बहराइचमें सैयद सालारजंग मसऊद गाजी (गाजीमियाँ)-की दरगाह है। वहाँ जेठके महीनेमें हर साल मेला होता है। वहाँ लोग अन्धविश्वासके कारण तरह-तरहकी कामनाओंको लेकर जाते हैं। कहते हैं कि यह गाजीमियाँ महमूद गजनीका भानजा था। यह गाजी होनेकी इच्छासे अवधकी ओर बढ़ आया था और श्रावस्तीके राजा सुहृददेवके हाथों मारा गया था॥ ४९६॥

ऐश्वर्य पाकर मनुष्य अपनेको निडर मान बैठते हैं

तुलसी निरभय होत नर सुनिअत सुरपुर जाइ।
सो गति लखि ब्रत अछत तनु सुख संपति गति पाइ॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि सुना जाता है, स्वर्गमें जाकर जीव निर्भय हो जाता है (समझता है कि मैं बुढ़ापे और बीमारीसे रहित होकर सदा ही भोग भोगता रहूँगा; क्योंकि स्वर्गमें बुढ़ापा और बीमारी नहीं है)। परंतु ऐसी दशा तो यहाँ इस शरीरके रहते भी सुख-सम्पत्ति और ऊँची पदवी पानेपर देखी जाती है (क्योंकि सुख-सम्पत्ति और ऊँचे पदको प्राप्त मनुष्य भी अभिमानवश अपनेको निर्भय ही मानता है) [परंतु वास्तवमें ऐसी बात नहीं है।] ॥ ४९७ ॥

तुलसी तोरत तीर तरु बक हित हंस बिडारि।
बिगत नलिन अलि मलिन जल सुरसरिहू बढ़िआरि॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि गंगाजी भी बढ़ जानेपर अपने किनारेके (आश्रित) वृक्षोंको तोड़ डालती हैं, बगुलों (दम्भियों)-के लिये हंसोंको (सच्चे ज्ञानियोंको) भगा देती हैं, कमल और भौंरोंसे (सद्‌गुणोंसे) रहित और मलिन जलवाली (मलिनहृदया) हो जाती हैं। (अर्थात् पार्थिव ऐश्वर्य बढ़ जानेपर सज्जनोंमें भी दोष आ जाते हैं। वे अभिमानमें भरकर पड़ोसी आश्रितोंको मिटा देते हैं, मूर्खतावश सच्चे पुरुषोंको अपने पाससे हटाकर दम्भियोंको आश्रय देते हैं और कुसंगतिके कारण सद्‌गुणोंसे रहित और पापजीवी हो जाते हैं।) ॥ ४९८ ॥

अधिकारी बस औसरा भलेउ जानिबे मंद।
सुधा सदन बसु बारहें चउथें चउथिउ चंद॥

भावार्थ—बुरा समय आनेपर भले अधिकारियोंको भी बुरा ही समझिये। चन्द्रमा अमृतका भण्डार होनेपर भी आठवें, बारहवें और चौथे स्थानमें पड़नेपर एवं भादों सुदी चौथके दिन देखनेपर हानिकारक हो जाता है॥ ४९९ ॥

नौकर स्वामीकी अपेक्षा अधिक अत्याचारी होते हैं

त्रिबिध एक बिधि प्रभु अनुग अवसर करहिं कुठाट।
सूधे टेढ़े सम बिषम सब महँ बारहबाट॥

भावार्थ—अवसर पड़नेपर मालिक यदि एक प्रकारसे बुराई करता है तो उसके अनुगामी सेवक तीन प्रकारसे करते हैं। वे सीधे सज्जनोंसे भी टेढ़ा बर्ताव करते हैं, समतामें भी विषमता करते हैं और सब कामोंको नष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं॥ ५००॥

प्रभु तें प्रभु गन दुखद लखि प्रजहिं सँभारै राउ।
कर तें होत कृपानको कठिन घोर घन घाउ॥

भावार्थ—मालिककी अपेक्षा मालिकके परिचारकवर्ग विशेष दुःखदायी होते हैं; इस बातको विचारकर राजाको चाहिये कि वह स्वयं अपनी प्रजाकी सँभाल करे। क्योंकि हाथकी चोटकी अपेक्षा हाथमें पकड़ी हुई तलवारकी चोट बहुत ही कठिन और भयंकर होती है॥ ५०१॥

ब्यालहु तें बिकराल बड़ ब्यालफेन जियँ जानु।
वहि के खाए मरत है वहि खाए बिनु प्रानु॥

भावार्थ—अपने हृदयमें अहिफेन (अफीम)-को साँप (अहि)-से भी अधिक भयंकर समझो। साँपके काटनेसे तो आदमी मरता ही है, परंतु अफीमको खाकर वह [जीता हुआ भी] प्राणहीन (मुर्देकी भाँति) हो जाता है॥ ५०२॥

कारन तें कारजु कठिन होइ दोसु नहिं मोर।
कुलिस अस्थि तें उपल तें लोह कराल कठोर॥

भावार्थ—[श्रीभरतजी महाराज अपनी कठोरताका विवेचन करते हुए कहते हैं कि मैं जो इतना कठोर हूँ, इसमें] मेरा दोष नहीं है; क्योंकि कार्य कारणसे कठोर होता ही है, जैसे [दधीचिकी] हड्डीसे बना हुआ वज्र हड्डीसे अधिक कठोर और पत्थरसे उत्पन्न लोहा पत्थरसे भी भयानक और कठोर होता है॥ ५०३॥

काल बिलोकत ईस रुख भानु काल अनुहारि।
रबिहि राउ राजहि प्रजा बुध ब्यवहरहिं बिचारि॥

भावार्थ—काल (समय) ईश्वरका रुख देखता है (ईश्वरके इच्छानुसार बदलता रहता है); सूर्य कालका अनुगमन करता है (यथासमय कार्य करता है), राजा सूर्यका अनुसरण करता है (सूर्यके यथायोग्य समयपर जल खींचने और बरसानेकी भाँति राजा प्रजासे कररूपमें धन लेकर उसीके हितमें लगा देता है), प्रजा राजाका अनुकरण करती है (जैसा राजा वैसी प्रजा) और बुद्धिमान् पुरुष सब व्यवहार विचारकर करते हैं (वे अपनी बुद्धिका ही अनुसरण करते हैं)॥ ५०४॥

जथा अमल पावन पवन पाइ कुसंग सुसंग।
कहिअ कुबास सुबास तिमि काल महीस प्रसंग॥

भावार्थ—जैसे निर्मल और पवित्र वायु बुरी (दुर्गन्धयुक्त) और अच्छी (सुगन्धयुक्त) वस्तुओंके संसर्गसे दुर्गन्धित और सुगन्धित कही जाती है, वैसे ही अच्छे या बुरे राजाके संसर्गसे काल भी अच्छा या बुरा कहा जाता है॥ ५०५॥

भलेहु चलत पथ पोच भय नृप नियोग नय नेम।
सुतिय सुभूपति भूषिअत लोह सँवारित हेम॥

भावार्थ—जिस प्रकार [सर्वोत्तम धातु] सोना लोहे [-के हथौड़े]-से पीट-पीटकर सँवारा जानेपर ही [गहना बनकर] सुन्दर स्त्री और सुन्दर राजाको भी भूषित करता है, उसी प्रकार राजाकी [निष्पक्ष] आज्ञा, [स्वार्थरहित] नीति तथा [कड़ाईसे बर्ते जानेवाले न्यायपूर्ण] कानूनके कारण ही भले लोगोंको भी बुरे मार्गमें चलनेमें डर लगता है॥ ५०६॥

राजाको कैसा होना चाहिये?

माली भानु किसान सम नीति निपुन नरपाल।
प्रजा भाग बस होहिंगे कबहुँ कबहुँ कलिकाल॥

भावार्थ—माली, सूर्य और किसानके समान नीतिमें निपुण राजा इस कलियुगमें प्रजाके सौभाग्यसे कभी-कभी होंगे [सदा नहीं]।

१-माली मुरझाये हुए पौधोंको सींचता है, बढ़े हुए जबरदस्तोंको काट-छाँटकर अलग कर देता है, झुके हुए (कमजोर) पौधोंको लकड़ीका टेका देकर गिरनेसे बचा लेता है और फिर फल-फूलोंका संग्रह करता है।

२-सूर्य किसीको भी प्रत्यक्षमें दुःख न देकर समुद्र और नदीसे जल खींच लेता है, उसीको अमृत-सा बनाकर यथायोग्य बरसा देता है।

३-किसान खेत तैयार करता है, खाद देता है, बीज बोता है, सींचता है, रक्षा करता है फिर फसल पकनेपर काटता है॥ ५०७॥

बरषत हरषत लोग सब करषत लखै न कोइ।
तुलसी प्रजा सुभाग ते भूप भानु सो होइ॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि सूर्य जब जलको खींचता है, तब किसीको भी पता नहीं लगता, परंतु जब बरसाता है, तब सब लोग प्रसन्न हो जाते हैं। इसी प्रकार [प्रजाको बिना सताये—यहाँतक कि कर देनेमें प्रजाको कुछ भी कष्ट न हो; इतना-सा कर उगाहकर—समयपर उसी धनसे व्यवस्थितरूपसे प्रजाका हित करनेवाला] सूर्य-सरीखा [कोई] राजा प्रजाके सौभाग्यसे ही होता है॥ ५०८॥

राजनीति

सुधा सुनाज कुनाज फल आम असन सम जानि।
सुप्रभु प्रजा हित लेहिं कर सामादिक अनुमानि॥

भावार्थ—सुन्दर दूध, घी आदि अमृत, उत्तम अन्न, कुत्सित अन्न, लताओंके फल, आम आदि पेड़ोंके फल—इन सबको खाद्यरूपमें समान जानकर अच्छे राजा साम, दान आदि नीतियोंके अनुसार प्रजाके हितकी इच्छासे प्रजासे 'कर' के रूपमें ग्रहण कर लेते हैं॥ ५०९॥

पाके पकए बिटप दल उत्तम मध्यम नीच।
फल नर लहैं नरेस त्यों करि बिचारि मन बीच॥

भावार्थ—उत्तम वह है जो वृक्षोंके पके फल लेता है, मध्यम वह है जो [पकनेतककी बाट न देखकर] अधपके फल ही तोड़कर घरमें पकाता है और नीच वह है जो अधीर होकर पत्तोंको ही नोच डालता है।

इसी प्रकार उत्तम राजाको भी मनमें विचारकर तभी कर वसूल करना चाहिये, जब फसल पक जाय, जिससे कि किसान आसानीसे दे सके; जो बिना ही फसल पके कर उगाहता है, वह मध्यम है और अकाल पड़नेपर भी पीड़ा पहुँचाकर किसानसे कर उगाहनेवाला स्वार्थी राजा नीच है॥ ५१०॥

रीझि खीझि गुरु देत सिख सखा सुसाहिब साधु।
तोरि खाइ फल होइ भल तरु काटें अपराधु॥

भावार्थ—गुरु, मित्र, अच्छे मालिक और साधुजन प्रसन्न होकर या [न माननेपर हमारे हितके लिये] क्रुद्ध होकर यही उपदेश देते हैं कि पका फल ही पेड़से तोड़कर खाना अच्छा है, पेड़को काट डालना अपराध है [राजाको कर उगाहनेके समय यह उपदेश ध्यानमें रखना चाहिये]॥ ५११॥

धरनि धेनु चारितु चरत प्रजा सुबच्छ पेन्हाइ।
हाथ कछू नहिं लागिहै किएँ गोड़ की गाइ॥

भावार्थ—पृथ्वीरूपी गौ जब राजाके प्रजावत्सलता तथा धर्मयुक्त उत्तम चरित्ररूपी चारेको चरकर दुग्धवती होती है और जब प्रजारूपी सुन्दर बछड़ेके द्वारा चोखे जानेपर पेन्हाती है [तभी उत्तम और अधिक दूध मिलता है], सिर्फ पैर बाँधकर दुहनेसे कुछ भी दूध हाथ नहीं लगता॥ ५१२॥

चढ़े बधूरें चंग ज्यों ग्यान ज्यों सोक समाज।
करम धरम सुख संपदा त्यों जानिबे कुराज॥

भावार्थ—जो दशा बवंडरमें पड़ी हुई पतंगकी और शोकोंके समूहमें पड़े हुए विवेककी होती है (अर्थात् वे नष्ट हो जाते हैं) वही दशा बुरे राज्यमें [सत्] कर्म, [सनातन] धर्म और सुख-सम्पत्तिकी भी समझनी चाहिये॥ ५१३॥

कंटक करि करि परत गिरि साखा सहस खजूरि।
मरहिं कुनृप करि करि कुनय सों कुचालि भव भूरि॥

भावार्थ—जैसे खजूरकी हजारों शाखाएँ वृक्षमें बहुतेरे काँटे बना-

बनाकर (स्वयं टूट-टूटकर) गिर पड़ती हैं, इसी प्रकार दुष्ट राजा भी अपनी दुष्ट नीतिसे कुचाल कर-करके संसारमें बार-बार जन्मते-मरते हैं॥ ५१४॥

काल तोपची तुपक महि दारू अनय कराल।
पाप पलीता कठिन गुरु गोला पुहुमी पाल॥

भावार्थ—काल (समय) ही गोलंदाज है, पृथ्वी ही तोप है, विकराल अनीति ही बारूद है, पाप ही पलीता है और राजा ही कठोर तथा भारी गोला है (अर्थात् बुरा समय ही दुष्ट राजाके द्वारा प्रजाका नाश कराता है)॥ ५१५॥

किसका राज्य अचल हो जाता है?

भूमि रुचिर रावन सभा अंगद पद महिपाल।
धरम राम नय सीय बल अचल होत सुभ काल॥

भावार्थ—पृथ्वी ही रावणकी सुन्दर सभा है, इसमें राजा ही अंगदका पैर है, धर्मरूपी राम और नीतिरूपी सीताके बलसे ही वह राजारूपी अंगदका पैर शुभ समयमें अचल हो जाता है॥ ५१६॥

प्रीति राम पद नीति रति धरम प्रतीति सुभायँ।
प्रभुहि न प्रभुता परिहरै कबहुँ बचन मन कायँ॥

भावार्थ—भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें जिसकी प्रीति है, [प्रजाहितकी] नीतिमें जो सदा रत है और धर्ममें जिसका स्वाभाविक ही विश्वास है, उस राजाको प्रभुता मन, वचन और शरीरसे कभी नहीं छोड़ती (अर्थात् उसका राज्य सदा बना रहता है)॥ ५१७॥

कर के कर मन के मनहिं बचन बचन गुन जानि।
भूपहि भूलि न परिहरै बिजय बिभूति सयानि॥

भावार्थ—जिस राजाके हाथमें हाथके गुण (रक्षा करना, दान देना आदि) हों, मनमें मनके गुण (प्रजावत्सलता, उदारता आदि) हों और वचनमें वचनके गुण (मधुरता, सत्यता, हितवादिता आदि) हों उस राजाको विजय, ऐश्वर्य और बुद्धिमत्ता भूलकर भी नहीं छोड़ते॥ ५१८॥

गोली बान सुमंत्र सर समुझि उलटि मन देखु।
उत्तम मध्यम नीच प्रभु बचन बिचारि बिसेषु॥

भावार्थ—गोली, साधारण बाण और सुमन्त्रित बाण [-के गुणों]-को मनमें समझकर और फिर इनके क्रमको उलटकर देखो और विचार करो कि उत्तम, मध्यम और नीच राजाके वचन क्रमशः ऐसे ही होते हैं, (अर्थात् उत्तम राजाके वचन सुमन्त्रित बाणके समान अमोघ हैं, जो कभी व्यर्थ नहीं जाते; मध्यम राजाके वचन साधारण बाणके समान हैं, जो व्यर्थ भी जा सकते हैं और नीच राजाके वचन गोलीके समान होते हैं—उनका शब्द तो बहुत विकराल होता है, परंतु निशाना चूक गया तो काम कुछ भी नहीं होता)॥ ५१९॥

सत्रु सयानो सलिल ज्यों राख सीस रिपु नाव।
बूड़त लखि पग डगत लखि चपरि चहूँ दिसि धाव॥

भावार्थ—चतुर शत्रु पानीके समान शत्रुरूपी नावको सिरपर रखता है (शत्रुका ऊपरसे बड़ा सत्कार करता है,) परंतु उसको डूबते हुए देखकर या पैर डगमगाते हुए देखकर तुरंत ही चारों ओरसे उसपर धावा कर देता है॥ ५२०॥

रैअत राज समाज घर तन धन धरम सुबाहु।
सांत सुसचिवन सौंपि सुख बिलसइ नित नरनाहु॥

भावार्थ—प्रजा, राजसमाज, घर, अपना शरीर, धन, धर्म और सेना आदिको शान्त और सुयोग्य मन्त्रियोंके हाथोंमें सौंप कर ही राजा नित्य सुखसे रह सकता है (अर्थात् जहाँ मन्त्री शान्त और योग्य नहीं होते, वहाँ राजा सुखसे नहीं रह सकता)॥ ५२१॥

मुखिआ मुखु सो चाहिऐ खान पान कहुँ एक।
पालइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित बिबेक॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि प्रधान (राजा)-को मुखके समान होना चाहिये, जो खाने-पीनेके लिये तो एक ही है; परंतु विवेकके साथ समस्त अंगोंका पालन-पोषण करता है॥ ५२२॥

सेवक कर पद नयन से मुख सो साहिबु होइ।
तुलसी प्रीति कि रीति सुनि सुकबि सराहहिं सोइ॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि सेवक हाथ, पैर और नेत्रोंके समान होने चाहिये और मालिक मुखके समान होना चाहिये। सेवक-स्वामीकी प्रीतिकी रीतिको सुनकर सुकवि उसकी सराहना करते हैं। (अर्थात् जैसे हाथ, पैर, आँख आदि खाद्य सामग्रियोंके संग्रहमें और विपत्ति पड़नेपर रक्षा करनेमें सहायता करते हैं, उसी प्रकार सेवककी मालिकको सहायता करनी चाहिये। और जैसे मुख सब पदार्थोंको खाता है, परंतु खाकर सब अंगोंको यथायोग्य रस पहुँचाता है और उन्हें पुष्ट करता है, उसी प्रकार मालिकको सबका पेट भरकर उन्हें शक्तिमान् बनाना चाहिये)॥ ५२३॥

सचिव बैद गुर तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तन तीनि कर होइ बेगिहीं नास॥

भावार्थ—यदि मन्त्री, वैद्य और गुरु [अप्रसन्नताके] भयसे या [स्वार्थसाधनकी] आशासे [हितकी बात न कहकर] 'हाँ' में 'हाँ' मिलाने लगते हैं तो राज्य, धर्म और शरीर—इन तीनोंका शीघ्र ही नाश हो जाता है॥ ५२४॥

रसना मन्त्री दसन जन तोष पोष निज काज।
प्रभु कर सेन पदादिका बालक राज समाज॥

भावार्थ—राजा पेट है, मन्त्री जीभ है और अन्य कर्मचारी दाँत हैं। जैसे दाँत भोजनको कुचलकर और जीभ उसका स्वाद लेकर तथा अपनी लार साथ लेकर उसे पेटमें पहुँचा देती है और पेट रस बनाकर सारे अंगोंको पुष्ट और संतुष्ट करता है, उसी प्रकार मन्त्री और अन्य राजकर्मचारी राजाके लिये सब अपना-अपना काम ठीक करते हैं और बदलेमें राजा उन सबका पोषण करता है और उन्हें संतुष्ट करता है। सेना और पदातिजन राजाके हाथ और पैर हैं। जैसे हाथ-पैर पेटकी रक्षा करते हैं और पेट हाथ-पैरको

पालता-पोषता है, उसी प्रकार सेना-पदाति राजाकी रक्षा करते हैं और राजा उनका पालन-पोषण करता है। फिर राजा माता-पिताके समान है और सारा राज-समाज राजाका बालक है। जैसे माता-पिता बालकका पालन-पोषण करते हैं, वैसे ही राजा सारे राजसमाजको पालता-पोषता है॥ ५२५॥

लकड़ी डौआ करछुली सरस काज अनुहारि।
सुप्रभु संग्रहहिं परिहरहिं सेवक सखा बिचारि॥

भावार्थ—जिस तरह कामकी सरसताके अनुसार लकड़ीके चम्मच या धातुकी करछुलका यथायोग्य संग्रह और त्याग किया जाता है (कहीं लकड़ीके चम्मचसे काम लिया जाता है तो कहीं उसका त्याग करके धातुकी करछुलीकी ही जरूरत पड़ती है) उसी प्रकार अच्छे स्वामी भी विचार करके सब प्रकारके सेवकों तथा सखाओंका यथायोग्य संग्रह और त्याग करते हैं॥ ५२६॥

प्रभु समीप छोटे बड़े रहत निबल बलवान।
तुलसी प्रगट बिलोकिऐ कर अँगुली अनुमान॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि मालिकके निकट छोटे, बड़े, निर्बल और बलवान्—सभी प्रकारके लोग रहते हैं। हाथकी अँगुलियोंसे अनुमान करके इस बातको प्रत्यक्ष देख लेना चाहिये (पाँचों अँगुलियाँ एक ही हाथमें हैं, परंतु बराबरकी नहीं हैं)॥ ५२७॥

आज्ञाकारी सेवक स्वामीसे बड़ा होता है

साहब तें सेवक बड़ो जो निज धरम सुजान।
राम बाँधि उतरे उदधि लाँघि गए हनुमान॥

भावार्थ—वह सेवक स्वामीसे बड़ा है, जो अपने धर्मपालनमें निपुण है। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी तो पुल बाँधकर समुद्रके पार उतरे, परंतु हनुमान्जी उसी समुद्रको लाँघकर चले गये॥ ५२८॥

मूलके अनुसार बढ़नेवाला और बिना अभिमान किये सबको सुख देनेवाला पुरुष ही श्रेष्ठ है

तुलसी भल बरतरु बढ़त निज मूलहि अनुकूल।
सबहि भाँति सब कहँ सुखद दलनि फलनि बिनु फूल॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि बड़का वृक्ष उत्तम है, जो अपनी जड़ (बुनियाद)- के अनुसार ही बढ़ता है और बिना ही फूले (घमंड किये बिना ही) अपने पत्तों और फलोंद्वारा सबको सब प्रकारसे सुख देता है॥ ५२९॥

त्रिभुवनके दीप कौन हैं?

सधन सगुन सधरम सगन सबल सुसाइँ महीप।
तुलसी जे अभिमान बिनु ते तिभुवन के दीप॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जो पुरुष धनवान्, गुणवान्, धर्मात्मा सेवकोंसे युक्त, बलवान् और सुयोग्य स्वामी तथा राजा होते हुए भी अभिमानरहित होते हैं, वे ही तीनों लोकोंके उजागर होते हैं॥ ५३०॥

कीर्ति करतूतिसे ही होती है

तुलसी निज करतूति बिनु मुकुत जात जब कोइ।
गयो अजामिल लोक हरि नाम सक्यो नहिं धोइ॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि यदि कोई जीव अपने पुरुषार्थके बिना ही मुक्त हो जाता है [तो उसकी कीर्ति नहीं होती] अजामिल श्रीहरिके लोकको चला गया, परंतु वह अपनी बदनामीको नहीं धो सका (अब भी उसकी उपमा लोग पापियोंसे ही देते हैं)॥ ५३१॥

बड़ोंका आश्रय भी मनुष्यको बड़ा बना देता है

बड़ो गहे ते होत बड़ ज्यों बावन कर दंड।
श्रीप्रभु के सँग सों बढ़ो गयो अखिल ब्रह्मंड॥

भावार्थ—बड़ेके अपनानेसे भी मनुष्य बड़ा हो जाता है, जैसे वामनभगवान्के हाथका दण्ड उनके साथ ही बढ़कर अखिल ब्रह्माण्डतक पहुँच गया॥ ५३२॥

कपटी दानीकी दुर्गति

तुलसी दान जो देत हैं जल में हाथ उठाइ।
प्रतिग्राही जीवै नहीं दाता नरकै जाइ॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं—जो लोग हाथ उठाकर [मछलियोंको फाँसनेके लिये] जलमें दान देते हैं (चारा डालते हैं) उस दानको ग्रहण करनेवाली मछली तो जीती नहीं और वह दाता भी नरकमें जाता है॥ ५३३॥

अपने लोगोंके छोड़ देनेपर सभी वैरी हो जाते हैं

आपन छोड़ो साथ जब ता दिन हितू न कोइ।
तुलसी अंबुज अंबु बिनु तरनि तासु रिपु होइ*॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं—जिस दिन अपने ही लोग अपना साथ छोड़ देते हैं, उस दिन कोई भी हित करनेवाला नहीं रह जाता [सूर्य कमलका मित्र है, परंतु] जब जल कमलका साथ छोड़ देता है, तब वही सूर्य कमलका वैरी बनकर उसे जला डालता है॥ ५३४॥

साधनसे मनुष्य ऊपर उठता है और साधन बिना गिर जाता है

उरबी परि कलहीन होइ ऊपर कलाप्रधान।
तुलसी देखु कलाप गति साधन घन पहिचान॥

भावार्थ—मोरकी पाँख जब जमीनकी ओर नीचे पड़ी रहती है, तो वह कलाहीन हो जाती है और वही जब ऊपरकी ओर होती है तो कलाप्रधान हो जाती है (जगमगा उठती है)। तुलसीदासजी कहते हैं कि मोरकी पाँखकी गति देखो और समझो कि मेघ ही इसमें प्रधान साधन है (तात्पर्य यह कि मोर-पंखकी गतिको समझकर तुम भी प्रेमघन घनश्याम श्रीरामजीके प्रेमको पहचानकर नाच उठो)॥ ५३५॥

---

* श्रीरामचरितमानसमें भी इसी भावकी एक अर्धाली मिलती है—
भानु कमल कुल पोषनिहारा। बिनु जल जारि करइ तेहि छारा॥

सज्जनको दुष्टोंका संग भी मंगलदायक होता है

तुलसी संगति पोच की सुजनहि होति म-दानि।
ज्यों हरि रूप सुताहि तें कीनि गोहारी आनि॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि सज्जनके लिये नीचकी संगति भी मंगलदायिनी होती है। जैसे विष्णुरूप बने हुए बढ़ईसे विवाह करनेवाली राजकन्याकी पुकार सुनकर साक्षात् भगवान् विष्णुने आकर सहायता की।

[एक राजकन्याने भगवान् विष्णुके साथ विवाह करनेकी प्रतिज्ञा की थी। एक चालाक बढ़ईने काठके दो हाथ जोड़कर विष्णुका रूप बनाया और उस राजकन्यासे विवाह कर लिया। एक बार राजकन्याके पितापर कुछ विपत्ति आयी, तब पिताके कहनेसे कन्याने भगवान् विष्णुसे प्रार्थना की और कहा कि मैं तो आपको ही वरना चाहती थी, बढ़ईने तो धोखेसे मुझको विवाह लिया; अतएव इस समय आप ही मेरे पिताकी रक्षा कीजिये। भगवान् विष्णुने कन्याकी सरल और सत्य प्रार्थनाको स्वीकार करके उसके पिताको विपत्तिसे मुक्त किया।] ॥ ५३६ ॥

कलियुगमें कुटिलताकी वृद्धि

कलि कुचालि सुभ मति हरनि सरलै दंडै चक्र।
तुलसी यह निहचय भई बाढ़ि लेति नव बक्र॥

भावार्थ—कलियुगकी कुचाल शुभ बुद्धिको हरनेवाली है, इसीलिये राजचक्र भी सरलस्वभावके साधुओंको ही दण्ड देता है। तुलसीदासजी कहते हैं कि यह निश्चय हो गया कि कलियुगमें कुटिलता नित नयी-नयी बढ़ रही है॥ ५३७॥

आपसमें मेल रखना उत्तम है

गो खग खे खग बारि खग तीनों माहिं बिसेक।
तुलसी पीवैं फिरि चलैं रहैं फिरैं सँग एक॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि पृथ्वी, आकाश और जलमें रहनेवाले तीनों प्रकारके पक्षियोंमें यह विशेषता है कि वे सब अपने-

अपने दल बनाकर एक ही साथ पानी पीते हैं, चलते-फिरते हैं और रहते हैं (मनुष्योंको इनसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये)॥ ५३८॥

सब समय समतामें स्थित रहनेवाले पुरुष ही श्रेष्ठ हैं

साधन समय सुसिद्धि लहि उभय मूल अनुकूल।
तुलसी तीनिउ समय सम ते महि मंगल मूल॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि वे ही लोग इस पृथ्वीपर मंगल-मूल होते हैं, जो [मनोरथ-सिद्धिके] अनुकूल साधन और अनुकूल समय तथा इन दोनोंके मूल उद्देश्यरूप सुन्दर सिद्धिको प्राप्त करके तीनों कालमें एकरस—समतायुक्त रहते हैं॥ ५३९॥

जीवन किनका सफल है?

मातु पिता गुरु स्वामि सिख सिर धरि करहिं सुभायँ।
लहेउ लाभु तिन्ह जनम कर नतरु जनमु जग जायँ॥

भावार्थ—जो लोग माता, पिता, गुरु और स्वामीकी शिक्षाको स्वभावसे ही सिर चढ़ाकर उसका पालन करते हैं, उन्हींने जन्म लेनेका लाभ पाया है, नहीं तो जगत्में जन्म लेना व्यर्थ ही है॥ ५४०॥

पिताकी आज्ञाका पालन सुखका मूल है

अनुचित उचित बिचारु तजि जे पालहिं पितु बैन।
ते भाजन सुख सुजस के बसहिं अमरपति ऐन॥

भावार्थ—जो पुरुष अनुचित-उचितका विचार छोड़कर (श्रद्धापूर्वक) पिताके वचनोंका पालन करते हैं, वे [यहाँ] सुख और सुकीर्तिके पात्र होकर [शरीर छोड़नेके पश्चात्] इन्द्रपुरीमें निवास करते हैं॥ ५४१॥

स्त्रीके लिये पतिसेवा ही कल्याणदायिनी है

सोरठा

सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभ गति लहइ।
जसु गावत श्रुति चारि अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय॥

भावार्थ—स्त्री जन्मसे ही अपवित्र है, किंतु पतिसेवा करनेसे वह [अनायास ही] शुभ गतिको प्राप्त होती है। पतिव्रता स्त्री वृन्दाका यश

चारों वेद गाते हैं और आज भी वह तुलसीके रूपमें श्रीहरिकी प्रिया बनी हुई है॥ ५४२॥

शरणागतका त्याग पापका मूल है

दोहा

सरनागत कहुँ जे तजहिं निज अनहित अनुमानि।
ते नर पावँर पापमय तिन्हहि बिलोकत हानि॥

भावार्थ—जो शरणागतकी रक्षा करनेमें अपना अहित सोचकर उसका त्याग कर देते हैं, वे मनुष्य पामर (क्षुद्र) और पापमय हैं और उनका मुख देखनेसे भी हानि होती है॥ ५४३॥

तुलसी तृन जलकूल को निरबल निपट निकाज।
कै राखै कै सँग चलै बाँह गहे की लाज॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि नदीतटका तृण अत्यन्त ही निर्बल और निकम्मा होता है, परंतु [कोई डूबनेवाला आदमी उसे पकड़ लेता है तो] वह भी अपनी बाँह पकड़नेकी लाजके कारण या तो उस शरणागतको बचा लेता है; अथवा [उसके बचानेकी चेष्टामें] स्वयं ही उखड़कर उसके साथ बह जाता है॥ ५४४॥

कलियुगका वर्णन

रामायन अनुहरत सिख जग भयो भारत रीति।
तुलसी सठ की को सुनै कलि कुचालि पर प्रीति॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि कलिकालमें लोगोंकी प्रीति कुचालपर ही रहती है; मुझ-जैसे मूर्खकी कौन सुनता है। लोगोंको सीख तो यही दी जाती है कि रामायणके अनुसार चलो (अर्थात् स्वार्थत्यागपूर्वक भाई-भाईमें प्रेम रखो), परंतु संसारमें लोग अनुकरण करते हैं महाभारतका (अर्थात् स्वार्थवश परस्पर कलहमें ही लगे रहते हैं)॥ ५४५॥

पात पात कै सींचिबो बरी बरी कै लोन।
तुलसी खोटें चतुरपन कलि डहके कहु को न॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि कलियुगमें लोग पेड़के

एक-एक पत्तेको अलग-अलग सींचना और एक-एक बरीमें अलग-अलग नमक मिलाना चाहते हैं (जिससे न तो पेड़की जड़में जल पहुँचता है और न सब बरियोंमें समान नमक पड़ता है) ऐसी हालतमें कहिये अपनी इस खोटी चतुराईसे कलियुगमें कौन नहीं ठगे गये (अपनी ही करनीसे आप ही दुःख पाते हैं)॥ ५४६॥

प्रीति सगाई सकल बिधि बनिज उपायँ अनेक।
कल बल छल कलि मल मलिन डहकत एकहि एक॥

भावार्थ—कलियुगके पापोंसे मलिन-मन हुए लोग प्रीति करके नाता जोड़कर वाणिज्य आदि अनेक उपायोंसे सब प्रकार कल-बल-छल करके परस्पर एक-दूसरेको ठगा करते हैं॥ ५४७॥

दंभ सहित कलि धरम सब छल समेत ब्यवहार।
स्वारथ सहित सनेह सब रुचि अनुहरत अचार॥

भावार्थ—कलिके धर्म सब दम्भयुक्त हैं, व्यवहार कपटयुक्त हैं, प्रेम स्वार्थयुक्त हैं और आचरण मनमाना है (अर्थात् सच्चा धर्म, निष्कपट व्यवहार, निःस्वार्थ प्रेम और शास्त्रोक्त आचरण नहीं है)॥ ५४८॥

चोर चतुर बटमार नट प्रभु प्रिय भँडुआ भंड।
सब भच्छक परमारथी कलि सुपंथ पाषंड॥

भावार्थ—कलियुगमें चोर ही चतुर माने जाते हैं (अर्थात् जो सफाईसे दूसरोंका स्वत्व हरण कर लेते हैं, उन्हींको लोग चतुर कहते हैं), लुटेरे ही खिलाड़ी (कलावन्त) गिने जाते हैं (जो मार-पीटकर धन छीन लेते हैं, उनको खिलाड़ी कहा जाता है); भाँड़ और भड़ुए ही राजाओं या मालिकोंको प्रिय होते हैं (जो खुशामद करके या तरह-तरहकी भाव-भंगियोंसे मूर्ख मालिकोंको रिझाते रहते हैं, वे ही उन्हें प्रिय होते हैं; सत्यवादी-सदाचारी नहीं); खान-पानका विचार त्यागकर सब कुछ खानेवाले ही महात्मा माने जाते हैं और पाखण्ड ही सन्मार्ग समझा जाता है अर्थात् सभी विपरीत हो रहा है॥ ५४९॥

असुभ बेष भूषन धरें भच्छाभच्छ जे खाहिं।
तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर पूज्य ते कलिजुग माहिं॥

भावार्थ—जो लोग अशुभ वेष बनाये रहते हैं—अशुभ अलंकार धारण करते हैं तथा खानेयोग्य और न खानेयोग्य सब कुछ खा जाते हैं—इस कलियुगमें वे ही मनुष्य योगी हैं, वे ही सिद्ध हैं और वे ही पूज्य हैं॥ ५५०॥

सोरठा

जे अपकारी चार तिन्ह कर गौरव मान्य तेइ।
मन क्रम बचन लबार ते बकता कलिकाल महुँ॥

भावार्थ—जो अपने आचरणसे दूसरोंका बुरा करनेवाले हैं, कलियुगमें उन्हींका गौरव है और वे ही मानके योग्य हैं एवं जो मन, वचन तथा कर्मसे झूठे होते हैं, वे ही वक्ता माने जाते हैं॥ ५५१॥

दोहा

ब्रह्मग्यान बिनु नारि नर कहहिं न दूसरि बात।
कौड़ी लागि लोभ बस करहिं बिप्र गुर घात॥

भावार्थ—इस कलियुगमें स्त्री-पुरुष ब्रह्मज्ञानको छोड़कर दूसरी चर्चा ही नहीं करते, किंतु वे ही [मिथ्या ब्रह्मज्ञानी] लोभवश एक कौड़ीके लिये ब्राह्मण और गुरुजनोंका घात कर डालते हैं [और कहते हैं कि कौन मरता है, कौन मारता है]॥ ५५२॥

बादहिं सूद्र द्विजन्ह सन हम तुम्ह ते कछु घाटि।
जानइ ब्रह्म सो बिप्रबर आँखि देखावहिं डाटि॥

भावार्थ—कलियुगमें शूद्रलोग ब्राह्मणोंसे वाद-विवाद करते हैं और आँख दिखाकर डाँटते हुए कहते हैं कि 'क्या हम तुमसे कुछ कम हैं? जो ब्रह्मको जानता है वही श्रेष्ठ ब्राह्मण है'॥ ५५३॥

साखी सबदी दोहरा कहि कहनी उपखान।
भगति निरूपहिं भगत कलि निंदहिं बेद पुरान॥

भावार्थ—कलियुगमें (कलियुगी) भक्तलोग मनमानी साखी,

गोंड़ गवाँर नृपाल महि जमन महा महिपाल।
साम न दान न भेद कलि केवल दंड कराल॥

भावार्थ—कलियुगमें गोंड़ (जंगली लोग) और गँवार तो पृथ्वीके राजा हो रहे हैं और यवन-म्लेच्छादि बादशाह। इनकी राजनीतिमें साम, दान, भेदका प्रयोग न होकर केवल कठोर दण्डका ही प्रयोग होता है॥ ५५९॥

फोरहिं सिल लोढ़ा सदन लागें अढुक पहार।
कायर कूर कुपूत कलि घर घर सहस डहार॥

भावार्थ—जैसे पहाड़की ठोकर लगनेपर [उसपर कुछ भी वश न चलनेसे] मूर्ख लोग [पहाड़के बदले] घरके सिल-लोढ़ेको फोड़ डालते हैं। इस प्रकार अपने ही घरवालोंको तंग करनेवाले कायर, क्रूर और कुपूत कलियुगमें सहस्रोंकी संख्यामें घर-घर होंगे॥ ५६०॥

प्रगट चारि पद धर्म के कलि महुँ एक प्रधान।
जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्यान॥

भावार्थ—सत्य, अहिंसा, शौच और दान—धर्मके ये चार चरण प्रसिद्ध हैं, जिनमेंसे कलियुगमें एक (दान) ही प्रधान रह गया है, जिस-किसी भी प्रकारसे दिये जानेपर दान कल्याण ही करता है॥ ५६१॥

कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास॥

भावार्थ—यदि मनुष्य विश्वास करे तो कलियुगके समान और कोई भी युग नहीं है; क्योंकि इसमें केवल श्रीरामचन्द्रजीके निर्मल गुणसमूहोंका गान करके ही मनुष्य बिना ही किसी परिश्रमके भवसागरसे तर जाता है॥ ५६२॥

और चाहे जो भी घट जाय, भगवान्में प्रेम नहीं घटना चाहिये

श्रवन घटहुँ पुनि दृग घटहुँ घटउ सकल बल देह।
इते घटें घटिहै कहा जौं न घटै हरिनेह॥

भावार्थ—कानोंसे चाहे कम सुनायी पड़े, आँखोंकी रोशनी भी

चाहे घट जाय, सारे शरीरका बल भी चाहे क्षीण हो जाय; किंतु यदि श्रीहरिमें प्रेम नहीं घटे तो इनके घटनेसे हमारा क्या घट जायगा ? ॥ ५६३ ॥

कुसमयका प्रभाव

तुलसी पावस के समय धरी कोकिलन मौन।
अब तो दादुर बोलिहैं हमें पूछिहै कौन॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि वरसातकी मौसममें कोयल यह समझकर मौन हो जाती है कि अव तो मेढक टर्रायेंगे, हमें कौन पूछेगा ? (वुरा समय आनेपर दुर्जनोंकी ही चलती है, इस समय सज्जन चुप हो रहते हैं) ॥ ५६४ ॥

श्रीरामजीके गुणोंकी महिमा

कुपथ कुतरक कुचालि कलि कपट दंभ पाषंड।
दहन राम गुन ग्राम जिमि ईंधन अनल प्रचंड॥

भावार्थ—कलियुगके कुमार्ग, कुतर्क, कुचाल, कपट, दम्भ और पाखण्डको जलानेके लिये श्रीरामचन्द्रजीके गुणसमुदाय वैसे ही हैं, जैसे ईंधनको जलानेके लिये प्रचण्ड अग्नि ॥ ५६५ ॥

कलियुगमें दो ही आधार हैं

सोरठा

कलि पाषंड प्रचार प्रबल पाप पावँर पतित।
तुलसी उभय अधार राम नाम सुरसरि सलिल॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि कलियुगमें केवल पाखण्डका प्रचार है; संसारमें पाप वहुत प्रवल हो गया है, सब ओर पामर और पतित ही नजर आते हैं। ऐसी स्थितिमें दो ही आधार हैं—एक श्रीरामनाम और दूसरा देवनदी श्रीगंगाजीका पवित्र जल ॥ ५६६ ॥

भगवत्प्रेम ही सब मंगलोंकी खान है

दोहा

रामचंद्र मुख चंद्रमा चित चकोर जब होइ।
राम राज सब काज सुभ समय सुहावन सोइ॥

भावार्थ—जिस समय भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके मुखचन्द्रको

का भाषा का संसकृत प्रेम चाहिऐ साँच।
काम जु आवै कामरी का लै करिअ कुमाच॥

भावार्थ—क्या भाषा, क्या संस्कृत, [श्रीभगवान्‌के गुण गानेके लिये तो] सच्चा प्रेम चाहिये। जहाँ कम्बलसे ही काम चल जाता हो, वहाँ बढ़िया दुशाला लेकर क्या करना है?॥ ५७२॥

रामकी दीनबन्धुता

मनि मानिक महँगे किए सहँगे तृन जल नाज।
तुलसी एते जानिऐ राम गरीब नेवाज॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि बस, इतना जान रखना चाहिये कि श्रीरामचन्द्रजी गरीबनिवाज—दीनबन्धु हैं। इसीसे उन्होंने मणि-माणिक्य आदि (जिनके बिना आनन्दसे हमारा काम चल सकता है) महँगे किये हैं और तृण, जल तथा अन्न (जिनके बिना पशु-पक्षी और मनुष्यादि प्राणियोंका काम ही नहीं चल सकता) आदि वस्तुओंको सस्ता कर दिया है॥ ५७३॥

❑❑

॥ श्रीहरि: ॥

परम श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार (भाईजी)-के अनमोल प्रकाशन

कोड	पुस्तक
820	भगवच्चर्चा (ग्रन्थाकार)
050	पदरत्नाकर
049	श्रीराधा-माधव-चिन्तन
058	अमृत-कण
332	ईश्वरकी सत्ता और महत्ता
333	सुख-शान्तिका मार्ग
343	मधुर
056	मानव-जीवनका लक्ष्य
331	सुखी बननेके उपाय
334	व्यवहार और परमार्थ
514	दु:खमें भगवत्कृपा
386	सत्संग-सुधा
342	संतवाणी—ढाई हजार अनमोल बोल
347	तुलसीदल
339	सत्संगके बिखरे मोती
349	भगवत्प्राप्ति एवं हिन्दू-संस्कृति
350	साधकोंका सहारा
351	भगवच्चर्चा
352	पूर्ण समर्पण
353	लोक-परलोक-सुधार
354	आनन्दका स्वरूप
355	महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर
356	शान्ति कैसे मिले?
357	दु:ख क्यों होते हैं ?
348	नैवेद्य
337	दाम्पत्य-जीवनका आदर्श
336	नारीशिक्षा
340	श्रीरामचिन्तन
338	श्रीभगवन्नाम-चिन्तन
345	भवरोगकी रामबाण दवा
346	सुखी बनो
341	प्रेमदर्शन
358	कल्याण-कुंज
359	भगवान्‌की पूजाके पुष्प
360	भगवान् सदा तुम्हारे साथ हैं
361	मानव-कल्याणके साधन
362	दिव्य सुखकी सरिता
363	सफलताके शिखरकी सीढ़ियाँ
364	परमार्थकी मन्दाकिनी
366	मानव-धर्म
526	महाभाव-कल्लोलिनी
367	दैनिक कल्याण-सूत्र
369	गोपीप्रेम

कोड	पुस्तक	कोड	पुस्तक
369	प्रार्थना—प्रार्थना-पीयूष	381	दीन-दुःखियोंके प्रति कर्तव्य
370	श्रीभगवन्नाम	379	गोवध भारतका कलंक एवं गायका माहात्म्य
373	कल्याणकारी आचरण	382	सिनेमा मनोरंजन या विनाशका साधन
374	साधन-पथ—सचित्र	344	उपनिषदोंके चौदह रत्न
375	वर्तमान शिक्षा	371	राधा-माधव-रससुधा-(षोडशगीत) सटीक
376	स्त्री-धर्म-प्रश्नोत्तरी	384	विवाहमें दहेज—
377	मनको वश करनेके कुछ उपाय	809	दिव्य संदेश...........
378	आनन्दकी लहरें		
380	ब्रह्मचर्य		

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित कुछ साधन-भजनकी पुस्तकें

कोड	पुस्तक	कोड	पुस्तक
052	स्तोत्ररत्नावली—सानुवाद	1214	मानस-स्तुति-संग्रह
819	श्रीविष्णुसहस्त्रनाम—शांकरभाष्य	1344	सचित्र-आरती-संग्रह
207	रामस्तवराज—(सटीक)	1591	आरती-संग्रह—मोटा टाइप
211	आदित्यहृदयस्तोत्रम्	208	सीतारामभजन
224	श्रीगोविन्ददामोदरस्तोत्र	221	हरेरामभजन—दो माला (गुटका)
231	रामरक्षास्तोत्रम्	576	विनय-पत्रिकाके पैंतीस पद
1594	सहस्त्रनामस्तोत्रसंग्रह	225	गजेन्द्रमोक्ष
715	महामन्त्रराजस्तोत्रम्	1505	भीष्मस्तवराज
054	भजन-संग्रह	699	गंगालहरी
140	श्रीरामकृष्णलीला-भजनावली	1094	हनुमानचालीसा—भावार्थसहित
142	चेतावनी-पद-संग्रह	228	शिवचालीसा
144	भजनामृत—६७ भजनोंका संग्रह	232	श्रीरामगीता
1355	सचित्र-स्तुति-संग्रह	851	दुर्गाचालीसा
		236	साधकदैनन्दिनी

निरखनेके लिये चित्त चकोर बन जाता है, वही समय रामराज्यकी भाँति सुहावना होता है और तभी सब काम शुभ होते हैं ॥ ५६७ ॥

बीज राम गुन गन नयन जल अंकुर पुलकालि।
सुकृती सुतन सुखेत बर बिलसत तुलसी सालि ॥

भावार्थ—जब परम पुण्यात्मा पुरुषके [पापरहित] निर्मल तनुरूपी सुन्दर और श्रेष्ठ खेतमें श्रीरामचन्द्रजीके गुणसमूहरूपी बीज बोये जायँ और प्रेमाश्रुओंके [पवित्र] जलसे उन्हें सींचा जाय, तुलसीदासजी कहते हैं कि तब उनमेंसे (आनन्दातिरेकके कारण) पुलकावलिरूपी [शुभ] अंकुर उत्पन्न होते हैं और तभी उसमें [भगवत्प्रेमरूपी] धानकी खेती लहराती है ॥ ५६८ ॥

तुलसी सहित सनेह नित सुमिरहु सीता राम।
सगुन सुमंगल सुभ सदा आदि मध्य परिनाम ॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि नित्य-निरन्तर भगवान् श्रीसीतारामजीके सुन्दर सगुण स्वरूपका प्रेमसहित स्मरण-ध्यान करते रहो; इससे आदि, मध्य और अन्तमें सदा ही अच्छे शकुन, परम मंगल और कल्याण होगा ॥ ५६९ ॥

पुरुषारथ स्वारथ सकल परमारथ परिनाम।
सुलभ सिद्धि सब साहिबी सुमिरत सीता राम ॥

भावार्थ—श्रीसीतारामजीका स्मरण करते ही मनुष्यके लिये सभी सिद्धियाँ और सबपर स्वामित्व सुलभ हो जाते हैं तथा सभी तरहके स्वार्थ (लौकिक कार्य), पुरुषार्थ (आध्यात्मिक कार्य) सफल होते हैं और अन्तमें परमार्थ (श्रीभगवान्)-की प्राप्ति होती है ॥ ५७० ॥

दोहावलीके दोहोंकी महिमा

मनिमय दोहा दीप जहँ उर घर प्रगट प्रकास।
तहँ न मोह तम भय तमी कलि कज्जली बिलास ॥

भावार्थ—जिसके हृदयरूपी घरमें इन दोहोंरूपी मणिमय दीपकका प्रकाश प्रकट होगा, वहाँ मोहरूपी अन्धकार, भयरूपी रात्रि और कलिकालरूपी कालिमाका विलास नहीं हो सकता ॥ ५७१ ॥

सबद, दोहा, कहानी और उपाख्यान कह-कहकर भक्तिका निरूपण करते हैं और प्रामाणिक वेद-पुराणोंकी निन्दा करते हैं॥ ५५४॥

श्रुति संमत हरिभगति पथ संजुत बिरति बिबेक।
तेहि परिहरहिं बिमोह बस कल्पहिं पंथ अनेक॥

भावार्थ—वैराग्य और ज्ञानसे युक्त वेदोक्त हरिभक्तिके मार्गको तो लोग विशेषरूपसे मोहके वशमें होकर छोड़ देते हैं और नये-नये (ज्ञान-वैराग्यहीन) मनमाने मार्गोंकी कल्पना करते हैं॥ ५५५॥

सकल धरम बिपरीत कलि कल्पित कोटि कुपंथ।
पुन्य पराय पहार बन दुरे पुरान सुग्रन्थ॥

भावार्थ—कलियुगमें सभी कुछ धर्मके प्रतिकूल हो गया, नये-नये करोड़ों कुमार्ग कल्पित हो गये (वास्तवमें वे मार्ग नहीं हैं, मनमानी कल्पनामात्र हैं) इससे पुण्य तो पहाड़ोंमें भाग गया और पुराणादि सद्ग्रन्थ वनोंमें जाकर छिप गये (अर्थात् वनोंमें और पर्वतोंकी गुहाओंमें एकान्तवास करनेवाले कुछ महात्माओंमें ही पुण्य और सद्ग्रन्थोंका पठन-पाठन रह गया है)॥ ५५६॥

धातुबाद निरुपाधि बर सदगुरु लाभ सुमीत।
देव दरस कलिकाल में पोथिन दुरे सभीत॥

भावार्थ—कलियुगमें रसायनविद्या, उपाधिरहित (अबाधित) वरदान, सद्गुरुकी प्राप्ति, सच्चे मित्र और देवताके प्रत्यक्ष दर्शन—ये पाँचों बातें डरके मारे पुस्तकोंमें छिप गयी हैं (अर्थात् पुस्तकोंमें ही इनके वर्णन मिलते हैं, प्रत्यक्षमें ये दिखलायी नहीं देते)॥ ५५७॥

सुर सदननि तीरथ पुरिन निपट कुचालि कुसाज।
मनहुँ मवा से मारि कलि राजत सहित समाज॥

भावार्थ—देवालय (मन्दिर), तीर्थ और पवित्र पुरियोंमें सर्वत्र ही अत्यन्त भ्रष्टाचार और भ्रष्ट वातावरण फैल गया है। मानो उन स्थानोंमें कलियुग अपने सारे समाजके (काम, क्रोध, दम्भ, लोभ, कपट, दुराग्रह, असत्य, हिंसा, स्तेय, व्यभिचार आदि दोषों एवं दुर्गुणोंके) साथ किलेबंदी करके विराजमान रहता है॥ ५५८॥